श्री चतुर्विंशति जिनस्तुति

श्री शांतिसागर चरित्र

रचयिता

कुंथुसागरजी महाराज

मुनिराज कुंथुसागर महाराज विरचित

श्रीचतुर्विंशति जिनस्तुति

व

श्रीशांतिसागर चरित्र

अनुवादकः—

श्री. धर्मरत्न पं. लालारामजी शास्त्री, मैनपुरी.
(यू. पी.)

प्रकाशकः—

श्रीमान् शेठ रावजीभाई केवलचंद
ईडर (महीकांठा)

थम आवृत्ति २००० } १९३६ वीर सं. २४६२ { मूल्य सदुपयोग

श्रीतपोधन १०८ मुनिश्री कुंथुसागरजी महाराज

(ग्रन्थकर्ता ।)

[Wardhaman P Sholapur]

दो शब्द.

द्रष्टव्या गुरवो नित्यं प्रष्टव्याश्च हिताहितं ।
महेज्ययाच यष्टव्या शिष्टानामिष्टमीदृशम् ॥

—महापुराण.

भगवज्जिनसेनाचार्यने शिष्टोंके नित्यकर्तव्यको वर्णन करते हुए गुरु यजनको भी बहुत महत्व दिया है। गृहस्थोंके मुख्य कर्तव्य इज्या व दत्ति है। दोंनो कार्योंके लिये गुरु प्रधान आधार हैं। जिस पंचम कालमें साक्षात् तीर्थंकर व इतर केवलियोंका एवं ऋद्धिधारी तपस्वियोंका अभाव है, एवं दिव्यज्ञानि मुनियोंके अभाव के साथ शास्त्रोंके अर्थको अनर्थ करनेवाले भोले लोगोंको भडकाने वालोंकी भी अधिकता है, इस विकट परिस्थितिमें पूज्यपाद जगद्वंद्य शांतिसागर महाराज सदृश महापुरुषोंका उदय होना सच-मुचमें भाग्यसूचक है। महर्षिके प्रसादसे आज भी आसेतु हिमाचल (दक्षिणसे लेकर उत्तर तक) धर्मप्रवाहका संचार हो रहा है। आजके युगमें आचार्य महाराज अलौकिक महापुरुष है। जगद्वंद्य है। संसारके दु.खोंसे भयभीत प्राणियोंको तारनेके लिये अकारण बंधु है। आचार्य महाराजके दिव्य विहारसे ही आज धर्मकी प्राचीन संस्कृति यत्रतत्र दृष्टिगोचर हो रही है। आपके हृदयकी गंभीरता, अचल धीरता, व शांतिप्रियताको देखते हुए सचमुचमें आपके नामका सार्थक्य समझमें आता हैं। जिन्होने भक्तिपूर्वक आपका एक दफे दर्शन किया हो उनको आपकी मह-

प्रसिद्ध थी, सातप्पा व सरस्वती दोनों अत्यंत प्रेम व हंसते हंसते देवपूजा, गुरूपास्ति आदि सत्कार्यमें सदा मग्न रहते थे। धर्मकार्य को वे प्रधान कार्य समझते थे। उनके हृदयमें आंतरिक धार्मिक श्रद्धा थी। श्रीमती सौ. सरस्वतीने संवत् २४२० में एक पुत्र रत्नको जन्म दिया, इस पुत्रका जन्म शुक्लपक्षकी द्वितीयाको हुआ, इसलिये शुक्ल पक्षके चंद्रमाके समान दिनपर दिन अनेक कलावोंसे वृद्धिंगत होने लगा है। मातापितावोंने पुत्रका जीवन सुसंस्कृत हो इस सुविचारसे जन्मसे ही आगमोक्त संस्कारोंसे संस्कृत किया जातकर्म संस्कार होनेके बाद शुभ मुहूर्तमें नामकरण संस्कार किया गया जिसमें इस पुत्रका नाम रामचंद्र रखा गया। बादमें चौल कर्म, अक्षराभ्यास, पुस्तक ग्रहण आदि संस्कारोंसे संस्कृत कर सद्विद्याका अध्ययन कराया। रामचंद्रके हृदयमें बाल्यकालसे ही विनय, शील व सदाचार आदिभाव जागृत हुए थे जिसे देखकर लोग आश्चर्य व संतुष्ट होते थे, रामचंद्रको बाल्यावस्थामें ही साधु संयमियोंके दर्शनमे उत्कट इच्छा रहती थी, कोई साधु ऐनापुरमें आते तो यह बालक दौडकर उनकी वंदनाके लिये पहुंचता था। बाल्यकालसे ही इसके हृदयमें धर्ममें अभिरुचि थी, सदा अपने सहधर्मियोंके साथमें तत्वचर्चा करनेमें ही समय इसका बीतता था। इस प्रकार सोलह वर्ष व्यतीत हुए। अब मातापितावोंनें रामचंद्रको विवाह करनेका विचार प्रकट किया, नैसर्गिक गुणसे प्रेरित होकर रामचंद्रने विवाहके लिये निषेध किया एवं प्रार्थनाकी कि पिताजी! इस लौकिक विवाहसे मुझे संतोष नही होगा। मैं अलौकिक विवाह अर्थात् मुक्तिलक्ष्मीके साथ विवाह करलेना चाहता हूं।

मातापितावोंने आग्रह किया कि पुत्र ! तुम्हे लौकिक विवाह भी करके हम लोगोंकी आंखोंको तृप्त करना चाहिये। आज्ञोल्लंघन-भयसे इच्छा न होते हुए भी रामचंद्रने विवाहकी स्वीकृति दी। मातापितावोंनें विवाह किया। रामचंद्रको अनुभव होता था कि मैं विवाह कर बडे बंधनमें पडगया हूं।

विशेष विषय यह है कि बाल्यकालके संस्कारोंसे सुदृढ होनेके कारण यौवनावस्थामें भी रामचद्रको कोई व्यसन नही था, व्यसन था तो केवल धर्मचर्चा, सत्संगति व शास्त्र स्वाध्यायका था। बाकी व्यसन तो उनसे घबराकर दूर भागते थे। इस प्रकार पचीस वर्ष पर्यंत रामचंद्रने किसी तरह घरमें वास किया परंतु बीच २ में मनमें यह भावना जागृत होती थी कि भगवन्! मैं इस गृहबंधनसे कब छूट्, जिनदीक्षा लेनेका भाग्य कब मिलेगा? वह दिन कब मिलेगा जब कि सर्वसंगपरित्याग कर में स्वपर कल्याण कर सकूं।

दैवात् इस बीचमें मातापितावोंका स्वर्गवास हुआ। विक-राल कालकी कृपासे एक भाई व बहिनने भी विदाई ली। अब रामचद्रका चित्त और भी उदास हुआ। क्रमशः बंधन छूट गया, अब संसारकी अस्थिरताका उन्होंने स्वानुभवसे पक्का निश्चय किया और उसका चित्त और भी धर्ममार्गपर स्थिर हुआ।

इतनेमें भाग्योदयसे सेनापुरमें प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद आचार्य शांतिसागर महाराजका पदार्पण हुआ। वीतरागी तपोधन मुनिको देखकर रामचंद्रके चित्तमें संसारभोगसे विरक्ति उत्पन्न होगई। प्राप्त सत्समागमको खोना उचित नहीं समझकर उन्होंने श्री आचार्य चरणोंमें आजन्म ब्रह्मचर्य व्रतको ग्रहण किया।

सन १९२५ फरवरी महीनेकी बात है। श्रवणबेलगोल महाक्षेत्रमें श्री बाहुबलिस्वामीका महामस्तकाभिषेक था। इस महाभिषेकके समाचार पाकर ब्रह्मचारिजीने वहां जानेकी इच्छा की। श्रवणबेलगुल जानेके पहिले अपने पास जो कुछ भी संपत्ति थी उसे दानधर्म आदि कर उसका सदुपयोग किया। एवं श्रवण-बेलगुलमें आचार्य शांतिसागर महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ली, उस समय आपका शुभनाम क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति रखागया। ध्यान, अध्यय-नादि कार्योंमें अपने चित्तको लगाते हुए अपने चारित्रमें आपने वृद्धि की व आचार्यचरणमें ही रहने लगे।

चार वर्षबाद आचार्यपादका चातुर्मास कुंभोज (बाहुबलि पहाड) में हुआ। उससमय आचार्य महाराजने क्षुल्लकजीके चारि-त्रकी निर्मलता देखकर उन्हे ऐलक जो कि श्रावकपदमें उत्तम स्थान है, उस दीक्षासे दीक्षित किया।

बाहुबलि पहाडपर एक खास बात यह हुई कि संघभक्त-शिरोमणि सेठ पूनमचंद घासीलालजी आचार्यवंदनाके लिये आये, और महाराजके चरणोंमें प्रार्थना की कि मैं सम्मेदशिखरजीके लिये संघ निकालना चाहता हूं। आप अपने संघसहित पधारकर हमें सेवा करनेका अवसर दें। आचार्य महाराजने संघभक्तशिरोमणि-जीकी विनंतिको प्रसादपूर्ण दृष्टिसे सम्मति दी। शुभमुहूर्तमें संघने तीर्थराजकी वंदनाके लिये प्रस्थान किया। ऐलक पार्श्व-कीर्तिने भी संघके साथ श्री तीर्थराजकी वंदनाके लिये विहार किया। सम्मेद शिखरपर संघके पहुंचनेके बाद वहांपर विराट उत्सव हुआ। महासभा व शास्त्री परिषत्के अधिवेशन हुए। यह

उत्सव अभूतपूर्व था। स्थावर तीर्थोंके साथ, जंगम तीर्थोंका वहांपर एकत्र संगम हुआ था।

संघने अनेक स्थानोंमें धर्मवर्षा करते हुए कटनीके चातुर्मास को व्यतीत किया। बादमें दूसरे वर्ष संघका पदार्पण चातुर्मासके लिये ललितपुरमें हुआ। यों तो आचार्य महाराजके संघमें सदा ध्यान अध्ययनके सिवाय साधुवोंकी दूसरी कोई दिनचर्या ही नहीं है। परंतु ललितपुर चातुर्माससे नियमपूर्वक अध्ययन प्रारंभ हुआ। संघमें क्षुल्लक ज्ञानसागरजी जो आज मुनिराज सुधर्मसागरजीके नामसे प्रसिद्ध है, विद्वान् व आदर्श साधु थे। उनसे प्रत्येक साधु अध्ययन करते थे। इस ग्रंथके कर्ता श्री ऐल्लक पार्श्वकीर्तिने भी उनसे व्याकरण, सिद्धांत व न्यायको अध्ययन करनेके लिये प्रारंभ किया।

आपको तत्वपरिज्ञानमें पहिलेसे अभिरुचि, स्वाभाविक बुद्धि तेज, सतत अध्ययनमें लगन, उसमें भी ऐसे विद्वान् संयमी विद्यागुरुवोंका समागम, फिर कहना ही क्या? आप बहुत जल्दी निष्णात विद्वान् हुए। इस बीचमें सोनागिर सिद्ध क्षेत्रमें आपको श्री आचार्य महाराजने दिगम्बर दीक्षा दी उससमय आपको मुनि कुंथुसागरके नामसे अलंकृत किया। चारित्रमें वृद्धि होनेके बाद ज्ञानमें भी नैर्मल्य बढ गया। ललितपुर चातुर्माससे लेकर ईडरके चातुर्मास पर्यंत आप बराबर अध्ययन करते रहे। आज आप कितने ऊंचे दर्जेके विद्वान् बन गये हैं यह लिखना हास्यास्पद होगा। आपकी विद्वत्ता इसीसे स्पष्ट है कि अब आप संस्कृतमें ग्रंथका भी निर्माण करने लग गये हैं। सैकडों वर्ष अध्ययन कर

बडी २ उपाधियोंसे विभूषित विद्वानकी हम आपसे तुलना नही कर सकते। क्यों कि आपमें केवल ज्ञान ही नही है अपितु चारित्र जो कि ज्ञानका फल है वह पूर्ण अधिकृत होकर आपमें विद्यमान है। इसलिये आपमें स्वपरकल्याणकारी निर्मल ज्ञान होनेके कारण आप सर्वजनपूज्य हुए हैं। आपकी जिसप्रकार रचनाकालमें विशेष गति है उसी प्रकार वक्तृत्वकलामे भी आपको पूर्ण अधिकार है। श्रोतावोंके हृदयको आकर्षण करनेका प्रकार, वस्तुस्थितिको निरूपण कर भव्योंको संसारसे तिरस्कार विचार उत्पन्न करनेका प्रकार आपको अच्छी तरह अवगत है। आपके गुण, संयम आदियोंको देखनेपर यह कहे हुए विना नही रहसकते कि आचार्य शांतिसागर महाराजने आपका नाम कुंथुसागर बहुत सोच समझकर रखा है। यह आपका संक्षिप्त परिचय है। पूर्णतः लिखनेपर स्वतंत्र पुस्तक ही बन सकती है।

ग्रन्थसार।

इस ग्रंथमें महर्षिने चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुति की है। प्रत्येक स्तुति सरल व मृदु शब्दोंसे अंकित होनेके अलावा गंभीर अर्थसे भी युक्त है। चतुर्विंशतिजिनस्तुतिके बाद गुरुभक्तिपूर्वक शांतिसागर महाराजकी स्तुति की है। शांतिसागर स्तुतिके बाद शांतिसागर महर्षिका चरित्र चित्रण किया है। चरित्रके मुख्यतः चार विभाग किये गये है। दक्षिण दिक् संधिमे आचार्य महाराज के दक्षिण विहार, वहांकी धर्मप्रभावना, चातुर्मास योग आदिका वर्णन किया गया है। पूर्वदिक् संधिमें दक्षिण विहारको समाप्त कर सम्मेदाचल विहार व वहां की पच कल्याणिक प्रतिष्ठा व संघभक्त

शिरोमणि की सेवा आदिका विवेचन होकर कटनी चातुर्मास तक का निरूपण है। उत्तर दिक् संधिमे ललितपुर, मथुरा, दिल्ली, जयपुर, व्यावर, उदयपुर चातुर्मासतक की सब घटनावोंका हाल है। तदनंतर ईडर चातुर्मासके वर्णन कर उपसंहार किया गया है। इसप्रकार यह ग्रन्थका सार लिखा है। ग्रन्थका असली रसास्वादन ग्रन्थको आद्यंत स्वाध्याय करनेसे विज्ञ पाठकोको आयगा ही।

वर्णन शैली।

महर्पिने इस ग्रन्थके निर्माण करनेमे इतने सरल शब्दोंकी योजना की है कि प्रवेशिकामे पढनेवाले छात्र भी उसे अच्छीतरह समझसकेंगे। ग्रंथके सरल होनेमे उसका उपयोग व प्रचार भी अधिक रूपसे होता है। इसमे कोई संदेह नही कि समाजके सर्व श्रेणीके सज्जन जिनके हृदयमे गुरुवोंके प्रति आस्था है, इसका स्वाध्याय कर पुण्य संचय करेंगे, हमारे ख्यालमें सरल रचनामें ग्रन्थकर्ताने यही उद्देश्य रखा होगा। इतनी मृदुरचना होनेपर भी हिंदी अनुवाद दिया गया है यह सोनेमें सुगंध होगया है।

वैशिष्ट्य.

इस ग्रन्थविषयक आराध्य चतुर्विंशति जिनमुनियोंके अधिपति है। आचार्य शांतिसागर महाराज भी मुनियोंके अधिपति है। ग्रन्थकर्ता स्वयं तपोधन मुनिराज है। ग्रन्थकर्ताके विद्यागुरु श्री मुनिराज सुधर्मसागरजी महाराज है। अनुवादक धर्मरत्न प लालारामजी शास्त्री मुनिभ्राता है। यह सब मंगल परिकर सच-मुचमें अभूतपूर्व है। मै तो मुनि नही हू। मुनिचरण सेवक जरूर

हूं, इसलिये अधिकार न होते हुए भी इतनी सेवा करनेका अवसर मिला यह महाभाग्य है।

अनुवादक.

इन दोनों ग्रन्थोंका अनुवाद धर्मरत्न पं. लालारामजी शास्त्रीने किया है। साहित्य संसारमें आपका परिचय देनेकी आवश्यकता नही है। आपने अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद व निर्माण किया है। साहित्यक्षेत्रमें आपके द्वारा जो उपकार हुआ है वह सचमुचमें चिरस्मरणीय है। जैन समाज आपका चिरकृतज्ञ रहेगा। हमें पंडितजीका इस प्रसंगमें अभिनंदन करते हुए परम हर्ष होता है।

प्रकाशक.

इस ग्रन्थकी एक हजार प्रति श्रीमान धर्मनिष्ठ सेठ शाहा चंदुलाल ज्योतीचंद सराफ बारामती व एक हजार प्रति श्रीमान धर्मनिष्ठ रावजीभाई केवलचंद ईडर वालोंनें प्रकाशित किया है। दोनों महोदय धर्मश्रद्धानी व गुरुभक्त हैं। आचार्य संघके प्रति आप दोनोंकी असीम भक्ति है, उसीके चिन्ह रूपमें इसे प्रकाशित किया है। आप महानुभावोंकी पात्र सेवा व अनवच्छिन्नवैय्यावृत्य अनुकरणीय है। इसके उपलक्ष्यमें हम दोनों महानुभावोंके हृदयसे अभिनंदन करते हैं एवं उन्हे कोटिशः धन्यवाद देते हैं। आशा है कि गुरुभक्त पाठक इस ग्रन्थका स्वाध्यायकर यथेष्ट पुण्य संचय करेंगे।

सोलापूर, भाद्रपद शु. ७ वी. सं. २४६२ } गुरुचरणसरोजचंचरीक,
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.

वीतराग तपोमूर्ति दिगम्बर जैनाचार्य—

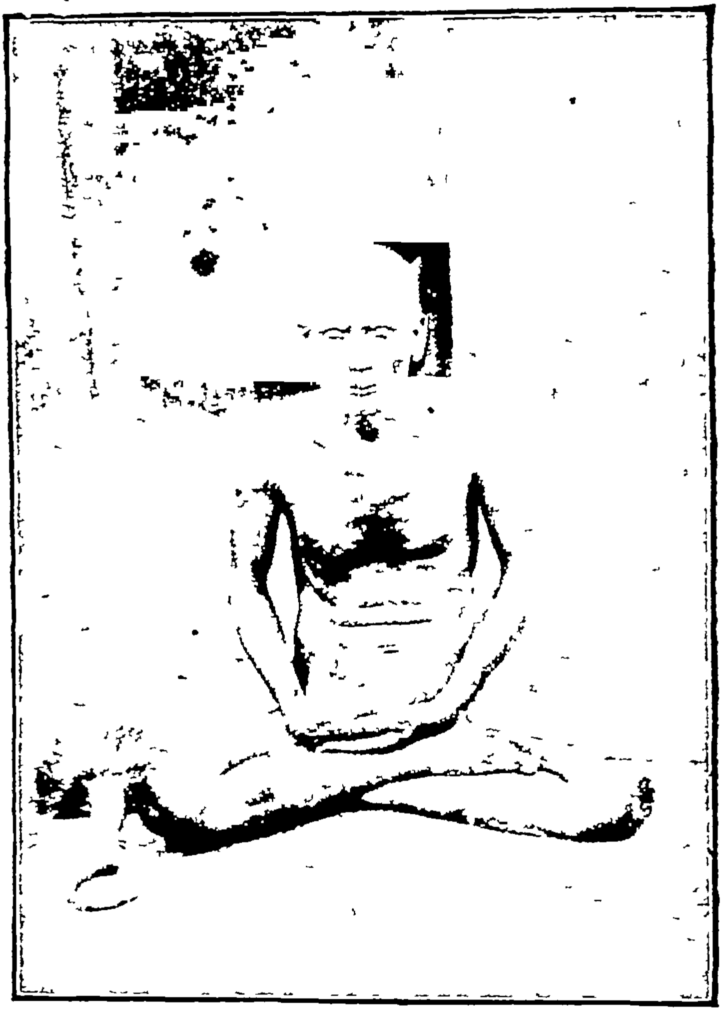

श्री १०८ आचार्य-शिरोमणि शान्तिसागरजी महाराज

विजेता मोहमल्लस्य, कलिकालस्य तीर्थकृत् ।
योगीन्द्रः साधुसंपूज्यः, पातु नः शान्तिसागरः ॥

समर्पण.

जिनके अमित प्रसादसे हमारा जीवन पावन हुआ
उन्हीं प्रातःस्मरणीय पादपूज्य गुरुवर्य आचार्य
श्री शान्तिसागर महाराज की
पादसेवामें यह ग्रन्थ
सादर समर्पित है।

—ग्रंथकर्ता.

वीतराग तपोमूर्ति दिगम्बर जैनाचार्य—

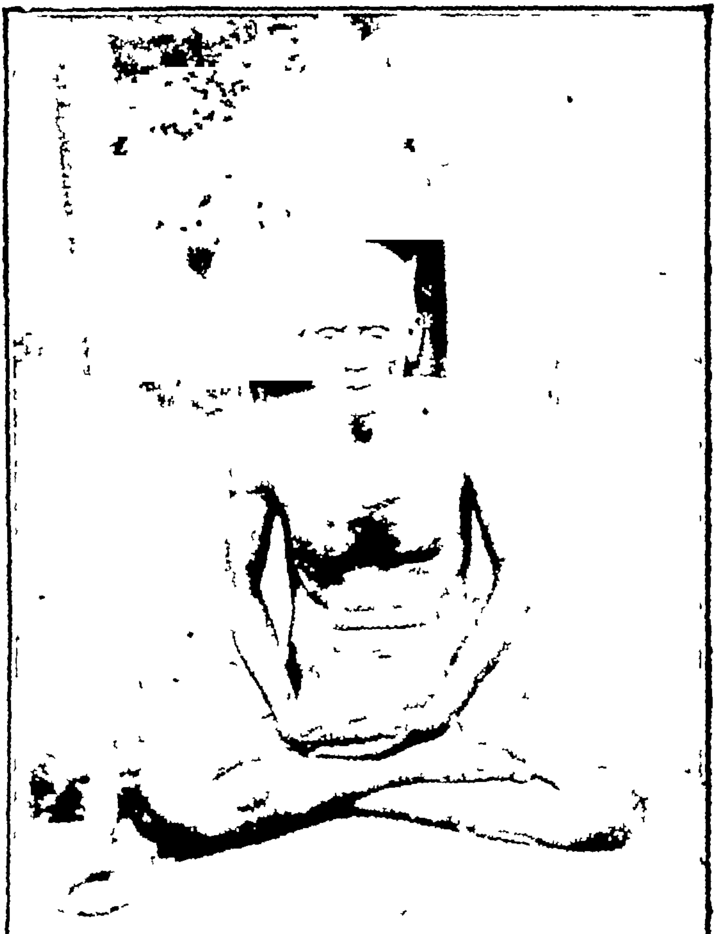

श्री १०८ आचार्य-शिरोमणि शान्तिसागरजी महाराज

विजेता मोहमल्लस्य, कलिकालस्य तीर्थकृत ।
योगीन्द्र: साधुसंपूज्य:, पातु न: शान्तिसागर: ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

मुनिराज श्रीकुंथुसागरविरचित

चतुर्विंशतिजिनस्तुति।

वृषभदेवस्तुति।

मरुदेव्या जगन्मातुर्नाभिभूपाज्जगत्पितुः।
धर्ममूर्तिर्दयासिंधुर्जातः श्रीवृषभेश्वरः ॥ १ ॥

अर्थ— भगवान् वृषभदेव स्वामी जगतकी माता मरुदेवी और जगतके पिता राजा नाभिरायके पुत्र थे। तथा वे धर्मकी मूर्ति थे और दयाके सागर थे।

श्रीनाभिसूनोर्भुवि पादयुग्मं
वंद्यं च पूज्यं हृदि चिन्तनीयम्।
स्वर्मोक्षदं शान्तिसुखप्रदं च
मां पातु शीघ्रं विषमाद्भवाब्धेः ॥ २ ॥

अर्थ— भगवान् वृषभदेवके दोनों चरणकमल इस संसारमें वंदनीय हैं पूज्य हैं अपने हृदयमें चिंतवन करने योग्य हैं। स्वर्ग मोक्षके देनेवाले हैं और शांति सुखके देनेवाले हैं ऐसे वे भगवान वृषभदेवके दोनों चरणकमल इस संसाररूपी विषम समुद्रसे शीघ्र ही मेरी रक्षा करो।

कल्पद्रुमाणां च विशेषनाशा-
दुःखं प्रजानां खलु चेन्न तासाम् ।
विदेहभूम्याः स्थितिमेव बुद्ध्वा
जातेन सत्रावधिलोचनेन ॥३॥

उक्ता हि वृत्तिर्भवतापि सोऽयं
त्रिवर्णभेदोऽपि यथा स्थितश्च ।
ततः प्रजानां च निधिस्त्वमेव
त्राता च नेता भवदुःखहर्ता ॥४॥

अर्थ— कल्पवृक्षोंके विशेष नाश होनेसे वहांकी प्रजाको दुःख न हो इसीलिये अपने साथ उत्पन्न हुए अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे विदेहक्षेत्रकी स्थिति जानकर प्रजाके लिये उसीप्रकार जीविकाके उपाय बतलाये और तीनों वर्णोंकी व्यवस्था जैसी वहां थी वैसी व्यवस्था बतलाई। इसीलिये हे प्रभो ! आप प्रजाके निधि हैं, आप ही उनके स्वामी हैं और आप ही संसारके दुःखोंको हरण करनेवाले हैं।

अकृष्टसस्यस्य विशेषनाशा-
दन्नैर्विना दुःखसमुद्रमग्नान् ।
विलोक्य जीवान् वृषभेण लोकाः
शिल्पादिकार्येषु तदा नियुक्ताः ॥५॥

अर्थ— जब विना बोये उत्पन्न हुए धान्य सब नष्ट होगये और अन्नके विना सब जीव दुःख समुद्रमें डूब गये तब उन जीवोंको दुःखी देखकर भगवान् वृषभदेवने उन सब जीवोंको असि, मसि, शिल्प आदि आजीविकाके उपायोंमें लगा दिया था ।

त्वमेव माता च पिता प्रजानां
शान्तिप्रदः पालकपोषकत्वात् ।
त्वमेव मित्रं हितचिंतकत्वा-
द्धा शंकरः कौ सुखदर्शकत्वात् ॥६॥

अर्थ— हे भगवन् ! समस्त प्रजाका पालन पोषण करनेके कारण आप ही उस प्रजाके माता हैं, आप ही पिता हैं और आप ही शांति प्रदान करनेवाले हैं । आप समस्त जीवोंका हित चिंतन करते हैं इसलिये आप ही सबके मित्र हैं और समस्त पृथ्वीपर आप ही सुख देनेवाले हैं इसलिये आपही शंकर कहलाते हैं ।

क्षेमत्वयोगात्कुशलत्वयोगा-
द्रूपस्त्वमेवात्र सुरक्षकत्वात् ।
प्रजासु पुत्रेषु समत्वयोगात्
त्राता प्रजानां परमार्थबुध्द्या ॥७॥

अर्थ— हे भगवन् ! आप सबके लिये क्षेम कुशल देनेवाले हैं और सबकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिये इस संसारमें

संसारलीलामवगम्य राज्यं
त्यक्तं च कर्तुं वरमोक्षराज्यम् ॥१०॥

अर्थ— उन भगवान् वृषभदेवने अपनी राज्यलक्ष्मीका उपभोग धर्मपत्नीके समान धर्मपूर्वक और श्रेष्ठ नीतिके अनुसार किया था । तदनंतर संसारकी लीलाको समझकर मोक्षका श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करनेके लिये इस राज्यका त्याग कर दिया था ।

चत्वारि कर्माणि निहत्य शीघ्रं
जातोऽसि वंद्यश्च नरामरेन्द्रैः ।
मुक्त्यंगनायाः परमः प्रियश्च
भोक्ता सदानन्तचतुष्टयस्य ॥११॥

अर्थ— तदनंतर भगवान् वृषभदेवने शीघ्र ही चारों घातिया कर्मोंका नाश किया और इन्द्र चक्रवर्ती आदि सबके द्वारा वंदना करने योग्य होगये । वे भगवान् मुक्तिरूपी स्त्रीके परमप्रिय होगये और सदाके लिये अनतचतुष्टयके भोक्ता होगये ।

स्वर्मोक्षदः शान्तिसुखप्रदश्च
विश्वस्य देवो भुवि भव्यबंधुः ।
भव्याशयानां भवतापहर्ता
दातासि तेभ्यः स्वसुखस्य राज्यम् ।१२।

अर्थ— हे देव, आप स्वर्गमोक्षको देनेवाले हैं शांतिसुखको देनेवाले हैं, समस्त भूमंडलके देव हैं और संसारमें भव्य

निहत्य कर्माण्यखिलानि देवः
कैलाशशैलाद् गतवान् हि मोक्षम् ।
त्वत्पादसेवासु भवन्ति लीना-
स्ते मोक्षहर्म्ये सुखिनो भवन्ति ॥१३॥

त्वामेव बंधुर्भवरोगहर्ता
देवाधिदेवः सुखशान्तिदाता ।
त्राता मुनीनां शरणं गतानां
त्वामेव वन्दे भवशान्तिहेतोः ॥१४॥

अजितनाथस्तुति ।

विजयायाः क्षमामूर्तेर्जितशत्रोर्जगद्विभोः ।
बभूवाजितनाथोऽयं भव्यभानुः सुखप्रदः ॥१॥

अर्थ— भगवान् अजितनाथ स्वामी क्षमाकी मूर्ति महारानी विजयाके और जगत्के स्वामी महाराज जितशत्रुके पुत्र थे । वे भगवान् ! भव्य रूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यके समान थे और सब जीवोंको सुख देनेवाले थे ।

संसारतापैर्विविधैः सदैव
तप्तेषु भव्येषु दयां विधाय ।
तेभ्यो जनेभ्यः सुखशान्तिमार्गं
प्रबोध्य जातो भवरोगवैद्यः ॥२॥

अर्थ— जो भव्य जीव अनेक प्रकारके संसारके संतापसे सदा संतप्त हो रहते थे उनपर दया करके भगवान् अजित नाथने उन भव्य जीवोंके लिये सुख और शान्तिके मार्गका उपदेश दिया और इस प्रकार वे भगवान् संसाररूपी रोगको दूर करनेवाले वैद्य बन गये ।

मिथ्यात्वजाले दृढबंधयुक्तान्
विलोक्य जीवान् भुवि तेन खिन्नान् ।

दयामयो मोक्षसुखप्रदश्च
धर्मः प्रणीतो भवतापहारी ॥३॥

अर्थ— भगवान् अजितनाथने इस संसारमें अनेक जीवों को मिथ्यात्वरूपी जालमें दृढताके साथ बंधे हुए और महा दुःखी देखकर संसारके संतापको दूर करनेवाला और मोक्षके सुखको देनेवाला इस दयामयी धर्मका निरूपण किया है।

यस्य प्रसादादजितस्य लोके
निजात्मलीनाः स्वरसाद्धि तुष्टाः ।
ध्यानोपयुक्ता यतयो भवन्ति
कर्मारिजालं क्षपितुं समर्थाः ॥४॥

अर्थ— इन्ही भगवान् अजितनाथके प्रसादसे मुनि लोग अपने आत्मामें लीन हो जाते हैं, अपने आत्मरससे संतुष्ट हो जाते है, ध्यानमें तल्लीन हो जाते हैं और कर्मरूपी जालको नाश करनेके लिये समर्थ हो जाते हैं।

संसाररोगस्य विनाशकं ते
दयामयं निर्मलधर्मतत्त्वम् ।
ये केऽपि जीवा हृदि धारयन्ति
ते मोक्षसौख्यं सहसाप्नुवन्ति ॥५॥

अर्थ— हे भगवान्! आपका कहा हुआ दयामय निर्मल धर्मतत्त्व संसाररूपी रोग को नाश करनेवाला है। इसी

लिये जो जीव इस धर्मको अपने हृदयमें धारण करलेते हैं वे मोक्षके सुखोंको अवश्य प्राप्त कर लेते हैं ।

भव्यात्मनां नाथ तवैव मूर्तिः
प्रतिक्षणं पुण्यनिबंधिनी च ।
स्वर्गप्रदात्री धनधान्यदात्री
पापस्य हंत्री नरकार्गला च ॥६॥

अर्थ— हे नाथ ! आपकी मूर्ती भव्य जीवोंको प्रतिक्षण पुण्य उत्पन्न करनेवाली है, स्वर्ग देनेवाली है, धन धान्य देनेवाली है, पापोंको नाश करनेवाली है और नरकको रोकनेके लिये अर्गल वा बेंडाके समान हैं ।

त्वं ब्रह्मवेत्ता सममित्रशत्रुः
ध्यानाग्निकर्मेन्धननाशकारी ।
त्वमेव मोक्षस्य सुखस्य दाता
मयापि वंद्यो सततं प्रपूज्यः ॥७॥

अर्थ— हे भगवन् ! आप परम ब्रह्मके जाननेवाले हैं, शत्रुमित्र सबको समान समझनेवाले हैं, ध्यानरूपी अग्निसे कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले हैं और आप ही मोक्षसुखके देनेवाले हैं इसीलिये हे नाथ, मैं भी आपकी सदा वंदना करता हूं और सदा आपकी पूजा करता हूं ।

वाक्कायचित्तैस्तव नाममंत्रं
सर्वाश्च विद्याः स्मरतां जनानाम् ।
सर्वे च देवाव रधीरवीराः
स्वराज्यलक्ष्म्यश्च वशीभवन्ति ॥८॥

अर्थ— हे प्रभो! जो पुरुष मन वचन कायसे आपके नामरूपी मंत्रको स्मरण करते हैं उनके समस्त विद्याएं वशीभूत हो जाती हैं, श्रेष्ठ और धीर वीर सब देव वश हो जाते हैं और मोक्षरूपी स्वराज्यलक्ष्मी वश हो जाती हैं ।

श्रीशंभवनाथस्तुति ।

पूज्याया जयसेनायाः जितारेश्च जगत्पितुः ।
जातः शंभवनाथश्च गुणसिंधुः क्षमानिधिः ॥१॥

अर्थ— भगवन् शंभवनाथ स्वामी पूज्य महारानी जयसेना और जगत्पिता महाराज जितारिके पुत्र थे, वे भगवान् गुणोंके समुद्र थे और क्षमाके खजाने थे ।

त्वं शंभवः कौ भवरोगतापैः
क्षुब्धस्य भव्यस्य च राजवैद्यः
भव्याशयानां भवरोगहर्ता
वैद्यो यथा देव गदापहारी ॥२॥

अर्थ— हे शंभवनाथ भगवन् ! आप इस पृथ्वीपर संसाररूपी रोगके संतापसे अत्यंत क्षुब्ध हुए भव्यजीवोंके लिये राजवैद्य हैं । हे देव, जिस प्रकार वैद्य रोगोंको दूर करनेवाला है उसीप्रकार आप भी भव्य जीवोंके संसाररूपी रोगको दूर करनेवाले हैं ।

पीत्वासुरां मोहमयीं च तीव्रां
निजात्मधर्मे गहला बभूवुः ।
अतीवमन्दाः खलु ये च जीवाः
प्रस्थापितास्ते परमार्थधर्मे ॥३॥

अर्थ— जो जीव मोहरूपी तीव्र मद्यको पीकर मोहित हो गये थे और अपने आत्मधर्ममें अत्यंत मंद होगये थे, हे नाथ, वे सब जीव आपने ही यथार्थ धर्ममें स्थापन किये हैं ।

कुटुम्बवर्गो धनरत्नराज्यं
संसारबंधस्य च मुख्यहेतुः
तेनैव दुःखं भवति प्रकर्ष
भव्यस्य चैवं कथितस्त्वयैव ॥४॥

अर्थ— कुटुबके सब लोक, धन, रत्न, राज्य, आदि संपदाएं सब संसारके बंधनके मुख्य कारण हैं और भव्य जीवों को इन्हींसे अत्यंत दुःख होता है, हे भगवन्, यह सब कथन आपने ही बतलाया है ।

त्वयैव दृष्टं परमार्थतत्वं
तवैव तीर्थं परमं पवित्रम् ।
मनोहरा ते परमैव मूर्तिः
संसारमोहस्य जवेन हर्त्री ॥५॥

अर्थ— हे भगवन् ! मोक्षरूप परमार्थ तत्त्व आपने ही देखा है, तथा आपका ही कहा हुआ वा किया हुआ तीर्थ परम पवित्र है । हे नाथ ! आपकी ही मूर्ति परम मनोहर है और संसारके मोहको बहुत शीघ्र नाश कर देती है ।

चिन्तामणिर्वा न च कल्पवृक्षो
न कामधेनुर्न परं च वस्तु ।
तुल्यं हि त्वत्पादपयोरुहस्य
किं वा प्रभो तद्रजसोपि लोके ॥६॥
चिन्तामणिर्गौर्ननु कल्पवृक्षो
ददाति स्वल्पं बहुयाचनातः ।
कौ श्रीपतेस्ते वरना मंत्रः
स्वर्मोक्षलक्ष्मीं च ददाति नित्याम् ॥७॥

अर्थ— हे प्रभो ! चिंतामणि रत्न अथवा कल्पवृक्ष अथवा कामधेनु अथवा इच्छानुसार फल देनेवाले और भी पदार्थ आपके चरणकमलोंके अथवा आपके चरणकमलोंकी धूलिके समान भी इस संसारमें कभी नहीं हो सकते । इसका भी कारण यह है कि चिन्तामणि रत्नसे, कामधेनुसे अथवा कल्पवृक्षसे बहुतसी याचना की जाय तब ये थोडासा फल देते हैं परंतु वे लक्ष्मीके स्वामी आपका नाम रूपी मंत्र सदा रहनेवाली स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मीको दे डालता है ।

इन्द्रोप्यशक्तोस्ति गुणान् हि वक्तुं
परस्य लोकस्य च का कथात्र ।
तथाप्यहं ते ननु गाढभक्त्या
गायामि किंचित्तव रंजनाय ॥८॥

अर्थ— हे नाथ ! संसारमें आपके गुणोंको कहनेके लिये इन्द्र भी समर्थ नहीं है फिर भला और लोगोंकी तो बात ही क्या है । तो भी मैं केवल आपकी गाढ भक्तिसे ही आपको प्रसन्न करनेके लिये कुछ थोडासा गाता हूं ।

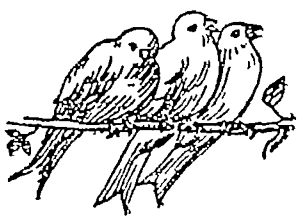

श्रीअभिनन्दननाथस्तुति ।

सिद्धार्थायाः दयार्द्रायाः संवरस्य दयानिधे ।
यश्चाभिनन्दनो जातः स्वात्मानन्दशिवप्रदः ॥१॥

अर्थ— भगवान् अभिनन्दन स्वामी अत्यंत दयालु माता महारानी सिद्धार्था और दयानिधि महाराज संवरके पुत्र थे। वे भगवान् अपने आत्मासे उत्पन्न हुए आनन्दस्वरूप मोक्षको देनेवाले हैं।

श्रीमोक्षलक्ष्म्याः स्वगुणैरचिन्त्यै-
र्यो भाति शुद्धैरचलैरनन्तैः ।
कौ सोऽभिनन्द्यो मुनिभिश्च वंद्यः
शान्त्यर्थिभिश्चेतसि चिन्तनीयः ॥२॥

अर्थ— जो भगवान् अभिनन्दन स्वामी गुणोंसे अनेक प्रकार की लक्ष्मीसे विभूषित ऐसी मोक्षलक्ष्मीके शुद्ध अचल अनन्त और अचिन्त्य श्रेष्ठ गुणोंसे शोभायमान हैं, जो समस्त पृथ्वीभरमें प्रशंसनीय हैं और शान्ति चाहनेवाले भव्य जीवोंको हृदयमें चितवन करने योग्य हैं ऐसे भगवान् अभिनन्दन स्वामी मुनियोंके द्वारा भी वंदना करने योग्य हैं।

निजात्मबाह्ये मलिने शरीरे
परैः पदार्थैः घटिते विधात्रा ।

खिन्नाय जीवाय प्रभो त्वया हि
धर्मः प्रणीतश्च दयां विधाय ॥३॥

अर्थ— यह शरीर अपने आत्मासे भिन्न है, मलिन है और पुद्गलादिक परपदार्थोंसे बना हुआ है ऐसे इस शरीरमें कर्मके निमित्तसे पडा हुआ यह जीव खेदखिन्न हो रहा है। हे प्रभो! ऐसे जीवोंके लिये ही आपने दयाकर अपने अहिंसामय धर्मका निरूपण किया है।

क्षुधातृषाव्याधिजरान्तकाल-
नीराग्निदुःखैः परिपूरितैश्च।
त्याज्यो न धर्मः सुखदः कदाचि-
दिष्टश्च भव्यै रभिनन्दनेन ॥४॥

अर्थ— भूख, प्यास, रोग, बुढापा, मृत्यु, जल, अग्नि आदिके दुःखोंसे ओतप्रोत होनेपर भी भव्य जीवोंको सुख देनेवाला धर्म कभी नहीं छोडना चाहिये यह उपदेश भगवान् अभिनन्दननाथने दिया है।

त्वद्धर्मतत्त्वं पठतां जनानां
भ्रान्तिर्न शंका हृदि कापि चिन्ता।
त्वन्नाममंत्रं स्मरतां जनानां
दुष्टग्रहोत्थो न भवेत्प्रकोपः ॥५॥

अर्थ— हे देव! जो पुरुष आपके धर्मतत्वको पढते हैं उनके हृदयमें न तो भ्रम उत्पन्न होता है, न शंका उत्पन्न होती है और न चिंता उत्पन्न होती है। हे नाथ! जो पुरुष आपके नामरूपी मंत्रका स्मरण करते हैं, उनको दुष्टग्रहोंसे उत्पन्न हुआ प्रकोप भी कभी नहीं होता है।

पापं च मह्यं विषमं च दुःखं
ददाति तीव्रं च भवे भवेऽस्मिन्।
कुत्रापि शान्तिर्न विना त्वयैव
मां पाति तस्मान्न च कोपि देवः ॥६॥

आनन्ददेशे वरदिव्यधाम्नि
स्वस्वादपिण्डे स्वरसे स्वराज्ये।
नित्ये स्थितिर्देव! तवैव बुध्वा
त्वत्पादपद्मे पतितोस्मि रक्ष ॥७॥

अर्थ— हे प्रभो! ये पाप मुझे इस भवभवमें अत्यंत तीव्र और विषम दुःख देते हैं। आपके विना कहीं भी शान्ति दिखाई नहीं देती और उन दुःखोंसे कोई भी देव मेरी रक्षा नहीं करता! हे देव, आपकी स्थिति ऐसे आनन्दमय देशमें है, जो सदा समानरूपसे बना रहता है, जो सर्वोत्तम दिव्य स्थान है, जो अपने आत्माके आस्वादनका पिंड है, अपने ही आत्मासे उत्पन्न हुए रससे भरपूर है और जहांपर केवल अपने

ही आत्माका राज्य है। यही समझकर मैं आपके चरणकमलोंमें आ पड़ा हूं; हे नाथ, मेरी रक्षा कीजिये।

त्वं विश्वबंधुश्च दयासमुद्र-
स्त्वमेव दाता स्वसुखस्य नित्यम् ।
श्रीमांश्च धीमान्निपुणस्त्वमेव
त्वं देहि मह्यं स्वसुखस्य राज्यम् ॥८॥

अर्थ— हे प्रभो! आप संसारमात्रके बंधु हैं, दयाके समुद्र हैं और आत्मसुखको सदा देनेवाले हैं। आप ही श्रीमान् हैं, बुद्धिमान् हैं और आप ही निपुण हैं। इसीलिये हे नाथ, मेरे लिये भी आत्मसुखका राज्य दे दीजिये।

श्रीसुमतिनाथस्तुति ।

मातुः सुमंगलायाश्च मेघभूपाज्जगत्पितुः ।
जातस्सुमतिनाथोऽयं लोके सुमतिदायकः ॥१॥

अर्थ— भगवान् सुमतिनाथ स्वामी जगत्माता महारानी सुमंगला और जगत्पिता महाराजा मेघप्रभुके पुत्र हैं और संसारभरमें श्रेष्ठ बुद्धिको देनेवाले हैं ।

त्वया प्रणीतैर्भवति स्वतत्वै-
र्निजात्मशुद्धिः परलोकसिद्धिः ।
त्वदन्यतत्वैर्न च कापि सिद्धि-
र्यथार्थसंज्ञोसि गुणैश्च नाम्ना ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् सुमतिनाथ परमदेव ! आपने जिन जीवादिकतत्वोंका निरूपण किया है उनसे अपने आत्माकी शुद्धि होती है और परलोककी सिद्धी होती है। आपके शिवाय अन्य लोगोंके कहे हुए तत्वोंसे किसी बातकी सिद्धी नहीं होती । इसीलिये हे सुमतिनाथ ! आपकी यह संज्ञा गुणोंसे भी यथार्थ है और नामसे भी यथार्थ है ।

सापेक्षतत्वं नयशास्त्रसिद्धं
त्वया प्रणीतं निजबोधकं च ।

अत्यंत शुद्धं सुखशान्तिदं वा
तेनात्मशुद्धिः स्वसुखस्य सिद्धिः ॥३॥

अर्थ— जो तत्वोंका स्वरूप अपेक्षापूर्वक है वह नयशास्त्रसे सिद्ध है, आत्माका ज्ञान करानेवाला है, अत्यंत शुद्ध है और सुख शान्तिको देनेवाला है। उन्हीं अपेक्षापूर्वकतत्वोंसे आत्माकी शुद्धि होती है और आत्म सुखकी प्राप्ति होती है। हे प्रभो, ऐसा तत्वोंका स्वरूप आपने ही बतलाया है।

पर्यायदृष्टया च बहुप्रकारो
द्रव्यादिदृष्टयास्ति ततो विरुद्धः ।
एकोप्यनेकः परमार्थदृष्टया
वक्तव्यहीनः सकलः पदार्थः ॥४॥

अर्थ— आपके कहे हुए संसारके समस्त पदार्थ पर्याय दृष्टीसे अनेक प्रकार हैं और द्रव्यार्थिक नयसे उसके विरुद्ध एक ही प्रकार हैं। इस प्रकार पदार्थोंका स्वरूप एक प्रकार भी है और अनेक प्रकार भी है। तथा वही पदार्थ परमार्थ दृष्टिसे वा निश्चय नयसे अवक्तव्य है। अर्थात् न एक रूपसे कहा जा सकता है और न अनेक रूपसे कहा जा सकता है। इसलिये अवक्तव्य है।

सतः पदार्थस्य सदैव लोके
वृद्धिर्विनाशौ भवतस्स्वभावात् ।

सतो न नाशोस्त्यसतो न वृद्धि-
स्त्वया प्रणीतो ननु सत्स्वभावः ॥५॥

अर्थ— इस संसारमें जो पदार्थ सत्स्वरूप है उसीकी स्वभावसे वृद्धि होती है और उसीका नाश होता है। जिस पदार्थकी सत्ता है उसका कभी नाश नहीं होता और जिस पदार्थकी सत्ता नहीं है उसकी कभी वृद्धि नहीं होती, हे नाथ! इसीलिये आपने पदार्थोंका स्वरूप सत्स्वरूप ही बतलाया है।

भवस्थितश्चोर्ध्वगतिस्वभावः
कर्ता च भोक्ताप्युपयोगरूपः।
देहप्रमाणः कथितो हि जीवः
सिद्धोप्यमूर्तो भगवन् त्वयैव ॥६॥

अर्थ— हे भगवन्! आपने जीवका स्वरूप भी नौ प्रकारसे बतलाया है। यथा यह जीव संसारी है, स्वभावसे ही ऊर्ध्वगामी है, कर्ता है, भोक्ता है, उपयोगरूप है, शरीरके प्रमाणके बराबर है और सिद्ध तथा अमूर्त है।

विधिर्निषेधोपि तवैव तीर्थे
इष्टः कथंचिद्व्यवहारदृष्ट्या।
द्रव्यार्थदृष्ट्या न विधिर्निषेध-
श्चैवं प्रणीतः परमार्थमार्गः ॥७॥

अर्थ— हे प्रभो! आपके ही तीर्थमें कथंञ्चित् व्यवहार दृष्टीसे पदार्थके स्वरूपमें विधि निषेध बतलाया है। यदि द्रव्या-

र्थिक नयसे देखा जाय तो न विधिरूप है और न निषेधरूप है। हे नाथ ! यह पदार्थोंका यथार्थस्वरूप आपने ही बतलाया है।

पर्यायदृष्ट्या कथितं त्वयैव
त्याज्यं च हेयं ग्रहणं हि योग्यम् ।
द्रव्यार्थदृष्ट्या ग्रहणं कदापि
त्याज्यं न लोके भवति स्वभावात् ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपने जो पर्यायार्थिक नयसे पदार्थोंका स्वरूप हेय और उपादेय रूप बतलाया है। उनमेंसे हेय पदार्थ त्याग करने योग्य बतलाये हैं और उपादेय पदार्थ ग्रहण करने योग्य बतलाये हैं। परंतु द्रव्यार्थिक नयसे न तो कोई पदार्थ त्याग करने योग्य है और न ग्रहण करने योग्य है। क्यों कि किसी भी पदार्थका स्वभाव त्याग करने योग्य वा ग्रहण करने योग्य नहीं है।

त्वमेव देवः परमात्मरूपः
सुरेन्द्रपूज्योपि नरेंद्रपूज्यः ।
स्याद्वादरूपापि तवैव वाणी
यथार्थतत्त्वप्रतिपादिनी च ॥९॥

अर्थ— इसीलिये हे भगवन् परम आप्तरूप देव आप ही हैं, आप ही इन्द्रोंके द्वारा पूज्य है, और आप ही चक्रवर्तियोंके द्वारा पूज्य हैं। तथा स्याद्वादरूप आपकी वाणी भी यथार्थ तत्वोंको प्रतिपादन करनेवाली है।

श्रीपद्मप्रभस्तुति ।

पुण्यवत्याः सुसीमायाः धारणस्य जगद्विभोः ।
पद्मप्रभो दयापुंजो जातः संसारनाशकः ॥१॥

अर्थ— भगवान् पद्मप्रभदेव, अत्यंत पुण्यवती महारानी सुसीमा और जगत्के प्रभु महाराज धारणके पुत्र हैं, वे भगवान् दयाके पुंज हैं और जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेवाले हैं।

कर्मारिजालं समशान्तिशस्त्रै-
र्विभेद्य वीरः खलु लीलयैव ।
जातोसि वंद्यश्च नरामरेन्द्रै-
र्नमामि भक्त्या भवतापशान्त्यै ॥२॥

अर्थ— महापराक्रमी भगवान् पद्मप्रभने कर्मरूपशत्रुओंके समूहको समता और शान्तिरूपी शस्त्रोंसे लीलामात्रमें नाश कर दिया है और इसीलिये वे भगवान् इन्द्र और चक्रवर्तियोंके द्वारा पूज्य हुए हैं। अतएव मैं भी अपने संसारके संतापको शान्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक उनको नमस्कार करता हूं।

पद्मप्रभः पद्मसमानवर्णः
श्रियैव चालिंगितभव्यमूर्तिः ।
भव्याशयानां च विकाशकर्ता
यथैव भानुर्वरपंकजाताम् ॥३॥

अर्थ— भगवान् पद्मप्रभके शरीरका वर्ण पद्म अर्थात् कमलके ही वर्णके समान है। और उनकी भव्य मूर्ति (दिव्य शरीर) अनेक प्रकारकी लक्ष्मीके द्वारा आलिंगन किया हुआ है। जिस प्रकार सूर्य श्रेष्ठ कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार पद्मप्रभ भगवान् भव्य जीवोंको प्रफुल्लित करनेवाले हैं।

पद्मप्रभोरेव शरीरकान्त्या
प्रातश्च सायं शशिनो रवेर्भा।
अद्यापि मन्दास्ति पराजिता कौ
यथार्थ चन्द्रश्च रविस्त्वमेव ॥४॥

अर्थ— भगवान् पद्मप्रभके शरीरकी कान्तिसे हार करके ही क्या मानो चन्द्रमाकी प्रभा प्रातःकालके समय आजतक मंद हो जाती है और सूर्यकी प्रभा सायंकालके समय आजतक मंद हो जाती है। इसलिये कहना चाहिये कि इस संसारमें वास्तविक सूर्य और चन्द्रमा आप ही हैं।

प्रोक्ता प्रभेयं तव विग्रहस्य
लोकेस्त्यगम्यैव निजात्मकान्तिः।
त्वद्धर्मबाह्यैः सकलैश्च जीवैः
त्वद्धर्मलीनैः सुलभास्ति भव्यैः ॥५॥

अर्थ— हे प्रभो! संसारमें ऐसी उत्तमप्रभा केवल आपके शरीरकी बतलाई है, आपके आत्माकी कांति तो अगम्य है और विशेषकर आपके धर्मको न माननेवाले समस्त मिथ्या

दृष्टी जीवोंको सर्वथा अगम्य है। परंतु वही आत्माकी कांति आपके धर्ममें लीन रहनेवाले भव्य जीवोंको सहज रीतिसे प्राप्त हो जाती है।

न क्वापि वांछा कृतकृत्ययोगा-
न्न कोपि हर्षः समभावयोगात् ।
तथापि वंद्या भवति प्रवृत्तिः
सर्वस्य शान्त्यै च भवादृशानाम् ॥६॥

अर्थ— हे भगवन्! आप कृतकृत्य हो गये हैं, इसलिये किसी भी पदार्थमें आपकी इच्छा नहीं रही है। तथा समस्त पदार्थोंमें आप समताभाव धारण करते हैं इसलिये आपके किसी प्रकारका हर्ष भी नहीं होता है तथापि आपके समान महापुरुषोंकी प्रवृत्ति सब जीवोंके लिये वंदनीय होती है और सब जीवोंके लिये शान्ति देनेवाली होती है।

दिव्यध्वनिं ते विनिशम्य भव्याः
पारं भवाब्धेः भवितुं समर्थाः ।
तथैव चानन्दरसे प्रवृत्तिं
कर्तुं स्वधर्मे स्वपदे भवन्ति ॥७॥

अर्थ— हे देव! आपकी दिव्यध्वनिको सुनकर भव्य जीव इस संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये समर्थ हो जाते हैं, अपने आत्मानन्दरूपरसमें प्रवृत्ति करनेको समर्थ हो जाते

अर्थ— यह शरीर हड्डी, रुधिर आदिसे भरा हुआ है, कफसे भरा है और चमड़ेसे ढका है, अत्यंत घृणित है, भयंकर है, मल मूत्रसे भरा है और अत्यंत दुर्गंधमय है ऐसे इस शरीरसे भगवान सुपार्श्वनाथ स्वामी अपने आत्म सुखकी प्राप्तिके लिये विरक्त होगये थे।

लब्धास्तिपुण्यैरिह राज्यलक्ष्मी
द्वेषाग्निभूमिः कुटिला स्वभावात्।
दुःखप्रदा सेति विबोध्य मुक्ता
देवेन मोक्षस्य सुखस्य हेतोः ॥४॥

अर्थ— यह राज्यलक्ष्मी यद्यपि पुण्यसे प्राप्त होती है तथापि द्वेषरूपी अग्निकी स्थान है, स्वभावसे ही कुटिल है और दुःख देनेवाली है। यही समझकर भगवान सुपार्श्वनाथ स्वामीने मोक्षका सुख प्राप्त करनेके लिये उस राज्य लक्ष्मीका त्याग कर दिया था।

स्वात्मानुभूत्या च कषायनाशा-
द्देहोपभोगादि विरक्तभावात्।
शुद्धात्मसाध्ये वरसिद्धभावे
स्थातुं सुपार्श्वेन कृतः प्रयत्नः ॥५॥

अर्थ— भगवान् सुपार्श्वनाथने अपनी आत्माकी स्वानुभूति प्रगट की थी, कषायोंको नाश किया था और देह तथा शरीर आदिसे विरक्त भाव धारण किया था इन्हीं सब कारणोंसे

भगवान् सुपार्श्वनाथने शुद्ध आत्माके द्वारा सिद्ध करने योग्य श्रेष्ठ सिद्धपरमेष्ठीके भावोंमें निश्चलतासे स्थिर रहनेके लिये प्रयत्न किया था ।

स्थित्वा सुपार्श्वेन निजात्मधर्मे
कृतं च युद्धं सुखशान्तिहर्त्रा ।
दुष्कर्मणा दस्युशतेन सार्द्धं
वैराग्यवज्रं च करे गृहीत्वा ॥६॥

अर्थ— भगवान् सुपार्श्वनाथने अपने आत्माके स्वभावमें स्थिर होकर और वैराग्यरूपी वज्रको हाथमें लेकर सुख और शान्तिको हरण करनेवाले अशुभ कर्मरूपी सैकडों शत्रुओंके साथ युद्ध किया था ।

समस्तकर्माणि सुदुःखदानि
ध्यानैश्च शुक्लैर्विनिहत्य शीघ्रम् ।
सुपार्श्वनाथश्च नरामरेन्द्रै-
र्जातश्च पूज्यो हृदि चिन्तनीयः ॥७॥

अर्थ— भगवान् सुपार्श्वनाथने शुक्लध्यानके द्वारा महा दुःख देनेवाले समस्त कर्मोंका शीघ्र ही नाश कर दिया था और इसीलिये वे भगवान् इन्द्र चक्रवर्ती आदिके द्वारा पूज्य होगये हैं और हृदयमें चितवन करने योग्य होगये हैं ।

वाक्कायचित्तस्य विशुद्धहेतोः
संसारबीजस्य विनाशहेतोः ।
स्वर्मोक्षदं तं हि सुपार्श्वनाथं
ध्यायामि चित्ते प्रणमामि भक्त्या ॥८॥

अर्थ— मैं अपने मन, वचन, कायको अत्यंत शुद्ध बनानेके लिये और संसारके बीजभूत कषायोंको नाश करनेके लिये स्वर्ग मोक्ष देनेवाले उन सुपार्श्वनाथको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं और अपने हृदयमें उनका ध्यान करता हूं ।

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति ।

लक्ष्मणायाः क्षमावत्या महासेनस्य धीमतः ।
चन्द्रप्रभो दयासिंधुर्जातो विघ्नविनाशकः ॥१॥

अर्थ— क्षमाको धारण करनेवाली महारानी लक्ष्मणा और अत्यंत बुद्धिमान् महाराज महासेनसे समस्त विघ्नोंको नाश करनेवाले और दयाके समुद्र भगवान चन्द्रप्रभ उत्पन्न हुए हैं।

चन्द्रप्रभस्त्वं परमःपवित्रो
भव्याशयानां भवरोगहर्ता ।
मिथ्याप्रतापं शमितुं समर्थ-
स्ततस्त्वमेवासि यथार्थचन्द्रः ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् चन्द्रप्रभ परमदेव ! आप सर्वोत्कृष्ट हैं, पवित्र हैं, भव्य जीवोंके संसाररूपी रोगको हरण करनेवाले हैं और मिथ्यात्वके प्रतापको शान्त करनेमें समर्थ हैं इसलिये वास्तवमें यथार्थ चन्द्रमा आप ही हैं।

सूर्यस्य चन्द्रस्य वभूव कान्तिः
सदैव मन्दा समये विलीना ।
प्रभानिधेस्ते प्रविलोक्य कान्तिं
शरीरजन्यां रविकोटितुल्याम् ॥३॥

अर्थ— हे प्रभो! आप प्रभाके निधि हैं, आपके शरीरसे उत्पन्न हुई करोंडो सूर्योंके समान आपकी कांतिको देखकर सूर्य और चन्द्रमाकी कान्ति सदाके लिये मंद हो गई है और समयपर वह नष्ट भी हो जाती है।

तव प्रभावाद्धि समन्तभद्रः
स्याद्वादशस्त्रैः निजवाक्प्रभावैः।
मिथ्याप्रलापं वदतः प्रमूढान्
विजित्य शीघ्रं शिवमार्गहीनान् ॥४॥
सद्धर्मतीर्थे सुखशान्तिमूले
भूपादिमुख्यान् हि नियोज्य शीघ्रम्।
सुकृत्य वीरो वरपुण्यमूर्ति-
र्बभूव भावी भुवि तीर्थकर्ता ॥५॥

अर्थ— हे भगवान्! आपके ही प्रभावसे आचार्य समन्तभद्र स्वामीने स्याद्वादरूपी शस्त्रोसे और अपने वचनोंके प्रभावसे मोक्षमार्गसे रहित तत्वोंके मिथ्याउपदेशको देनेवाले और अत्यंत मूढ ऐसे लोगोंको तथा शिवकोटि आदि राजाओंको शीघ्र ही जीत लिया था और सुख तथा शान्तिके मूल कारण ऐसे श्रेष्ठ धर्मरूपी तीर्थमें उनको बहुत शीघ्र लगा दिया था। इसप्रकार वे समन्तभद्रस्वामी आपके ही प्रभावसे श्रेष्ठ कार्योंके करनेमें शूर वीर होगये थे, पुण्यकी श्रेष्ठ मूर्ति बन गये थे और इस संसारमें ही होनहार तीर्थंकर बन गये थे।

त्वद्धर्मलीनाश्च भवन्ति वंद्या
ये त्वत्समानाश्च त एव मुक्ताः ।
स्वर्मोक्षमूलस्य सुखप्रदस्य
चन्द्रप्रभोस्ते महिमास्त्यचिन्त्यः ॥६॥

अर्थ— हे प्रभो ! जो पुरुष आपके धर्ममें लीन हो जाते है वे वंदनीय हो जाते हैं, आपके समान हो जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं । हे चन्द्रप्रभ ! आप स्वर्ग और मोक्षके मूल कारण हैं और सुखके देनेवाले हैं इसीलिये हे नाथ, आपकी महिमा अचिन्त्य हैं ।

स्वर्मोक्षदं ज्ञानकलानिधानं
श्लाघ्यं पवित्रं सुखशान्तिरूपम् ।
सुभव्यराजीवप्रमोदभानुं
संसारसंतप्तनिशाकरं च ॥७॥

चन्द्रप्रभं चन्द्रसमानशान्तं
वंद्यं सुपूज्यं च नरामरेन्द्रैः ।
ध्यायामि भक्त्या मनसा स्मरामि
संसारकान्तारविनाशहेतोः ॥८॥

अर्थ— भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी स्वर्ग मोक्षके देनेवाले हैं, ज्ञान और कलाओंके निधान हैं, प्रशंसनीय हैं, पवित्र हैं,

सुख तथा शांतिरूप हैं, श्रेष्ठ भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यके समान हैं, संसारसे संतप्त हुए जीवोंको शांति पहुंचानेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, चन्द्रमाके समान शांत हैं, वंदनीय हैं और इन्द्र चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुषोंके द्वारा पूज्य हैं ऐसे भगवान् चन्द्रप्रभको मैं अपने संसाररूपी घनको नाश करनेके लिये भक्तिपूर्वक मनसे स्मरण करता हूं और भक्तिपूर्वक उनका ध्यान करता हूं ।

श्रीपुष्पदंतजिनस्तुति।

धर्मवत्याश्च रामायाः सुग्रीवस्य क्षमावतः।
पुष्पदन्तो जगद्बंधुश्चासीद्दुःखविनाशकः ॥१॥

अर्थ— समस्त दुःखोंको नाश करनेवाले और जगत्-मातके बंधु भगवान् पुष्पदन्त श्रेष्ठ धर्मको धारण करनेवाली महारानी रामा और अत्यंत क्षमावान् महाराज सुग्रीवके पुत्र थे।

स्थितोस्मि यस्मिन् हि पदे प्रमोहाद्
भव्यैश्च निंद्यं विपदास्पदं तत्।
विचार्य चैवं सुविधिश्च जातो
निजात्मबाह्यान्निलयाद्विरक्तः ॥२॥

अर्थ— भगवान् पुष्पदन्तने विचार किया कि मैं अपने मोहनीय कर्मके उदयसे जिस गृहस्थपदमें रह रहा हूं वह पद भव्य जीवोंके द्वारा निंदनीय हैं और अनेक आपत्तियोंका स्थान है यही समझकर वे भगवान् पुष्पदन्त अपने आत्मासे बाह्य ऐसे गृहस्थपदसे विरक्त होगये थे।

कर्मारिदुर्गं समशान्तवज्रैः
क्षमातपोध्यानगुणैः सुयोधैः।
विभेद्य लीनः स्वपदे च तुष्टो
जातो हि वंद्यो मुनिभिः स देवः ॥३॥

अर्थ— उन भगवान् पुष्पदन्तने क्षमा, तप, ध्यान आदि आत्माके गुणरूपी श्रेष्ठ योद्धाओंको साथ लेकर तथा समता और शान्त परिणामरूपी वज्रको हाथमें लेकर कर्मरूपी शत्रुओंका किला तोड दिया था और अत्यत सतुष्ट होकर अपने आत्मपदमें लीन होगये थे। इसीलिये वे भगवान् मुनियोंके द्वारा भी वन्दना करने योग्य होगये हैं।

नैकान्तदृष्टया नयशास्त्रसिद्धं
सापेक्षवाग्भिर्ग्रथितं त्वदुक्तम्।
मोक्षप्रदं निर्मलजीवतत्वं
मोक्षार्थिभव्यैर्हृदि चिन्तनीयम् ॥४॥

अर्थ— हे भगवन्! आपने जिस निर्मल जीवतत्वका निरूपण किया है वह एकांत दृष्टीसे एकांत नयशास्त्रसे सिद्ध नहीं हो सकता। वह सापेक्ष वचनोसे गुथा हुआ है और इसी लिये वह मोक्षतत्वको प्राप्त करनेवाला है। अतएव मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोको वह निर्मल जीवतत्व अपने हृदयमें सदा चितवन करने योग्य है।

त्वमेव देवः भुवनेशपूज्यः
निर्दोषसर्वज्ञ जनेषु मुख्यः।
हितोपदेशी भवतापहर्ता
जगद्धितैषी सकलैश्च वंद्यः ॥५॥

अर्थ— हे भगवन्! इस संसारमें आप ही परम देव हैं, आप ही तीनों लोकोंके इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हैं, आप ही दोष रहित सर्वज्ञ देवोंमें मुख्य हैं, आप ही हितोपदेशी हैं, आप ही संसारके संतापको दूर करनेवाले हैं, आप ही तीनों लोकोंका हित करनेवाले हैं और इसीलिये आप सब जीवोंके द्वारा वंदना करने योग्य है।

ये केपि भव्या मनसा पठन्ति
त्वद्धर्मतत्वं भवनाशनाय।
ते त्वत्समानाश्च भवन्ति शीघ्रं
कार्या न शंकात्र कदापि स्वप्ने ॥६॥

अर्थ— हे भगवन्! आपके कहे हुए धर्मतत्वको जो कोई भव्य जीव अपने जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेके लिये मनसे पढते हैं वे जीव बहुत ही शीघ्र आपके समान हो जाते हैं। इसमें स्वप्नमें भी कभी शंका नहीं करनी चाहिये।

त्वद्धर्मसूर्येपि सुमार्गदूरा
मोहोदयाद्ये भुवि दृष्टीहीनाः।
इच्छन्त्यवश्यं पतितुं भवाब्धै
ते कौशिका वा नरदेहरूपाः ॥७॥

अर्थ— हे भगवन्! आपके कहे हुए धर्मरूपी सूर्यके उदय होते हुए भी जो मोक्षके श्रेष्ठ मार्गसे दूर हैं और मोहनीय कर्मके उदयसे जो दृष्टिहीन है, सम्यग्दर्शनसे रहित हैं और

इसीलिये जो संसाररूपी समुद्रमें अवश्य पडना चाहते हैं उन्हें मनुष्यशरीरको धारण करनेवाले उलूक ही समझना चाहिये ।

वाक्कायचित्तं विमलं च कृत्वा
विहाय मोहं भवरोगमूलम् ।
स्वर्मोक्षदं ते वरनाममंत्रं
स्मरन्तु भव्या भवरोगशान्त्यै ॥८॥

अर्थ— इसलिये भव्य जीवोंको अपने मनवचनकायको निर्मल कर और संसाररूपी रोगके मूल कारण ऐसे मोहको छोडकर संसाररूपी रोगको शान्त करनेके लिये स्वर्ग-मोक्ष देनेवाले आपके नामरूपी मन्त्रका सदा स्मरण करते रहना चाहिये ।

श्रीशीतलनाथस्तुति ।

धर्मपत्न्याः सुनन्दायाः राज्ञो दृढरथस्य च ।
शीतलो लोकनाथश्च जातः कर्मारिनाशकः ॥१॥

अर्थ— कर्मरूपी समस्त शत्रुओंको नाश करनेवाले और तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् शीतलनाथ महाराजा दृढरथकी धर्मपत्नी महारानी सुनन्दाके पुत्र थे।

चन्द्रप्रभा चन्दनपुष्पहाराः
शीतस्वभावं समये त्यजन्ति ।
स्थिरास्त्रिलोके तव शान्तिशीत-
स्त्वमेव शीलो जिन शीतलाख्यः ॥२॥

अर्थ— हे जिन शीतलनाथ परमदेव ! चन्द्रमाकी चांदनी, चन्दन और पुष्पोंका हार समयपर अपने शीतल स्वभावको छोड देते है परतु आपकी शान्तिरूपी शीतलता तीनों लोकोंमें सदा स्थिर रहती है। इसलिये कहना चाहिये कि इस संसारमें आप ही शीतल हैं।

लेपेन तेषां खलु धारणेन
भवन्ति तृप्ताः क्षणमात्रमेव ।
आकर्ण्य ते शीतलमिष्टवाणीं
तुष्टाःसदा स्वात्मरसे भवन्ति ॥३॥

अर्थ— चन्दनके लेप करनेसे और पुष्प मालाके धारण करनेसे लोग क्षणमात्रके लिये तृप्त होते हैं परतु आपकी शीतल और मिष्ट वाणीको सुनकर लोग सदाके लिये अपने शुद्ध आत्माके रसमें सतुष्ट हो जाते हैं।

त्वद्वाग्विरुद्धेऽध्वनि ये व्रजन्ति
दीनादरिद्राश्च सदा भवन्ति।
पुनःपुनस्ते विषमे भवाब्धौ
पतन्ति मूर्खाश्च चिरं भ्रमन्ति ॥४॥

अर्थ— हे प्रभो! जो जीव आपके वचनोंके विरुद्ध मार्गमें चलते हैं, वे सदा दीन दरिद्री ही रहते हैं, वे मूर्ख जीव वार वार संसाररूपी विषम समुद्रमें पडते हैं और वहांपर चिरकाल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

स्थातुं शरीरे विषयांश्च भोक्तुं
कुर्वन्त्यकार्यं निजबोधहीनाः।
दुःखं सहन्ते वधबंधनोत्थं
भोगस्य हेतोः करिणो यथा वा ॥५॥

अर्थ— हे नाथ! जो जीव अपने आत्मबोधसे रहित हैं वे शरीरमें रहनेके लिये और इन्द्रियोंके विषयोंका भोग करनेके लिये बहुतसे निंद्य कार्य वा न करने योग्य कार्य कर डालते हैं तथा जिसप्रकार हाथी भोगोंके सेवन करनेके लिये

वधबंधनके अनेक दुःख सहन करता है उसीप्रकार वे जीव भी भोगोंके सेवन करनेके लिये अनेक प्रकारके वधबंधनके दुःख सहते हैं ।

षट्खण्डराज्यस्य निजात्मशान्तेः
स्वर्गापवर्गस्य सुखस्य दाता ।
व्याधेर्विरोधस्य जवेन हर्ता
त्वमेव भव्यस्य सदा शरण्यः ॥६॥

अर्थ— हे भगवन् ! आप छहो खंड राज्यको देनेवाले हैं, अपने आत्मासे उत्पन्न होनेवाली परमशान्तिको देनेवाले हैं और स्वर्ग मोक्षके सुख देनेवाले हैं। इसके सिवाय आप रोग और विरोधको बहुत शीघ्र नाश कर देते हैं इसलिये हे प्रभो ! भव्य जीवोंके लिये आप ही सदा शरण हैं ।

अटन्तु सर्पाः कुटिलाश्च मार्गे
गच्छन्ति यावन्न च वामलूरे ।
भ्रमन्तु जीवाश्च तथा कुमार्गे
आयान्ति यावन्न भवत्सुमार्गे ॥७॥

अर्थ— हे नाथ ! सर्प मार्गमें कुटिलतासे तभीतक चलते हैं जबतक कि वे अपनी वामीमें नहीं जाते। इसीप्रकार ये संसारी जीव कुमार्गमें तभीतक परिभ्रमण करते हैं जबतक कि वे आपके कहे हुए सुमार्गमें नहीं आते ।

त्वया विनाहं कुटिले कुमार्गे
दीनो हि भूत्वा भ्रमितः कृपाब्धे।
त्राता त्वमेवेति च सर्वजन्तो-
र्ज्ञात्वा प्रभोस्ते पतितोस्मि युग्मे ॥८॥

अर्थ— हे नाथ! हे कृपाके समुद्र! आपके विना मैं दीन होकर नरकादिक कुटिल मार्गोमें परिभ्रमण कर रहा हूं। तथा हे प्रभो! आप समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले हैं यही समझकर मैं आपके चरण कमलोंमें आ पडा हूं।

श्रीश्रेयांसनाथस्तुति।

विष्णुश्रियो जगन्मातुः सतो विष्णोर्जगत्प्रभो।
श्रेयसो दायकः श्रेयान् जातो वंद्यो नरामरैः ॥१॥

अर्थ— सब प्रकारके कल्याणोंको देनेवाले और इन्द्र चक्रवर्ती आदिके द्वारा वन्दना करने योग्य भगवान् श्रेयांसनाथ परमदेव जगत्की माता महारानी विष्णुश्री और जगतके पिता सर्वोत्तम सज्जन महाराजा विष्णुके पुत्र उत्पन्न हुए हैं।

त्वयोदिते श्रेयसि मोक्षमार्गे
निजात्मरूपे परभावहीने।
ज्ञानात्मके वा चरणात्मके वा
स्थातुं प्रयत्नश्च कृतो मयायम् ॥२॥

अर्थ— हे भगवन्! आपने जिस मोक्षमार्गका निरूपण किया है वह कल्याण करनेवाला है, अपने आत्माके स्वभावरूप है, पुद्गलादिक परभावोंसे रहित है, सम्यग्ज्ञानात्मक है अथवा सम्यक् चारित्र रूप है। हे नाथ, ऐसे आपके कहे हुए मोक्षमार्गमें स्थिर रहनेके लिये मैंने यह प्रयत्न किया है।

श्रेयन् त्वया श्रेयसि मोक्षमार्गे
शान्तिप्रदे स्थापयितुं सुभव्यान्

कृतःप्रयत्नश्च ततस्त्वमेव
दयानिधिः शान्तिसुखप्रदोसि ॥३॥

अर्थ— हे भगवन् श्रेयांसनाथ ! आपने भव्य जीवोंको सब जीवोंका कल्याण करनेवाले और शान्ति देनेवाले मोक्ष मार्गमें स्थापन करनेके लिये प्रयत्न किया है । इसीलिये प्रभो ! आप ही दयानिधि हैं और आप ही शान्ति और सुखको देनेवाले हैं ।

स्वर्गापवर्गस्य निजात्मसिद्धे-
र्मार्गःप्रणीतश्च विभो ! त्वयैव ।
पुण्यस्य पापस्य फलं प्रणीतं
संसारदुःखस्य विमोचनाय ॥४॥

अर्थ— हे भगवन् हे विभो ! आपने संसारके दुःखोंको नाश करनेके लिये स्वर्ग मोक्षका मार्ग बतलाया है, अपने आत्माकी सिद्धिका मार्ग बतलाया है और पुण्यपापका फल बतलाया है ।

संसारतापं शमितुं समर्थं
त्वया प्रणीतं परमार्थसूत्रम् ।
स्याद्वादरूपं नयधर्मयुक्तं
प्रमाणसिद्धं निखिलैश्च मान्यम् ॥५॥

अर्थ— हे प्रभो ! आपने जो परमार्थ सूत्रका निरूपण किया है वह स्याद्वाद रूप है, नयोसे सिद्ध किये हुए धर्मोंसे

सुशोभित है, प्रमाणसे सिद्ध है और समस्त जीवोंके द्वारा मान्य है। हे नाथ! ऐसा वह आपका कहा हुआ परमार्थतत्त्व संसारके संतापको शान्त करनेके लिये सर्वथा समर्थ है।

त्वं विश्वबंधुर्भवरोगहर्ता
भव्याशयानां सुखशान्तिदाता।
ध्येयस्ततो नाथ सदा प्रपूज्यो
वाक्कायचित्तेन जिनेशभक्तैः ॥६॥

अर्थ— हे भगवन्! आप तीनों लोकोंके बंधु हैं, संसाररूपी रोगको नाश करनेवाले हैं और भव्य जीवोंको सुख शान्ति देनेवाले हैं इसीलिये हे नाथ, भगवान् जिनेन्द्रदेवके भक्त जीवोंके द्वारा मनवचनकायसे आप पूजा करने योग्य हैं और सदा ध्यान करने योग्य हैं।

त्वद्वाक्प्रसादं सुखदं च लब्ध्वा
भव्याश्च पर्यायमतिं त्यजन्ति।
सर्वार्थसिद्धिं स्वधनं स्वराज्यं
लब्ध्वा लभन्ते स्वसुखं क्रमेण ॥७॥

अर्थ— हे भगवन्! इस संसारमें रहनेवाले भव्यजीव आपके वचनोंकी सुख देनेवाली प्रसन्नताको पाकर अपनी पर्याय बुद्धिको छोड देते हैं। तथा सर्वार्थसिद्धिके सुख, अनंत चतुष्टय रूप आत्मधन और समवसरणरूप आत्मराज्यको पाकर अनु-क्रमसे मोक्षरूप आत्मसुखको प्राप्त होते हैं।

श्रेयन् प्रभो ! मे शिवसौख्यसिद्धिं
स्वात्मोपलब्धि परिणामशुद्धिम् ।
बोधिं समाधिं कुरु नाथ शीघ्र-
मन्यन्न याचे जिनराज किंचित् ॥८॥

अर्थ— हे जिनराज ! हे प्रभो ! हे श्रेयांसनाथ ! आप मेरे लिये मोक्षसुखकी सिद्धि कीजिये, अपने आत्माकी प्राप्ति कीजिये, मेरे परिणामोंकी शुद्धि कीजिये, रत्नत्रयकी प्राप्ति कीजिये और उत्तम ध्यानकी प्राप्ति कीजिये। हे प्रभो ! मैं आपसे और कुछ नही मांगता हूं ।

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति ।

पूज्याया विजयायाश्च वसुपूज्यस्य भूभृतः ।
वासुपूज्यो जगद्वन्द्यो जातो हि सुखदायकः ॥१॥

अर्थ— जगत्के द्वारा वंदनीय और सब जीवोंको सुख देनेवाले भगवान् वासुपूज्य स्वामी अत्यंत पूज्य महारानी विजया और महाराज वसुपूज्यके पुत्र हुए थे ।

गणेन्द्रश्राद्धैर्मुनिभिश्च भक्त्या
स्वात्मोपलब्ध्यर्थमवश्यमेव ।
श्रीवासुपूज्यो हृदि चिन्तनीयः
सुपूजनीयः खलु वन्दनीयः ॥२॥

अर्थ— गणधर देवोंको, उत्तम श्रावकोंको और मुनियोंको अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके लिये भगवान् वासुपूज्यको भक्तिपूर्वक अवश्य ही अपने हृदयमें चिन्तवन करना चाहिये, उनकी पूजा करनी चाहिये और उनकी वंदना करनी चाहिये ।

स्तुत्या न तोषः खलु निन्दया वा
रोषो न देवे त्वयि वीतरागे ।
सम्पूजकेभ्यो मुनिनायकेभ्यः
स्वर्गापवर्गस्य तथापि दाता ॥३॥

अर्थ— हे देव ! आप वीतराग हैं इसलिये स्तुति करनेसे तो आपको संतोष नहीं होता और निन्दा करनेसे आपको क्रोध नहीं होता । तथापि जो मुनिराज आपकी पूजा करते हैं उनके लिये आप स्वर्ग मोक्ष अवश्य देदेते है ।

इच्छन्ति ये कौ तरितुं भवाब्धे-
स्तवैव चास्यं वर मंगलाढ्यम् ।
अनन्यभावैरवलोकनीयं
चैत्यं गृहं प्रत्यहमेवभव्यैः ॥४॥

अर्थ— हे भगवन् ! जो भव्य जीव इस पृथ्वीपर संसार रूपी समुद्रसे पार होना चाहते हैं 'उनको प्रतिदिन एकाग्र चित्तसे अनेक मंगलोंसे सुशोभित ऐसे आपके मुखका दर्शन करना चाहिये। इसीप्रकार आपकी प्रतिमाका दर्शन करना चाहिये, आपके चैत्यालयका दर्शन करना चाहिये ।

सावद्यकर्मापचितौ सुदाने
दुधस्य सिंधौ च यथा विषस्य ।
बिन्दुः सुदाने यजने प्रवृत्तिं
कुर्युः प्रमादं च ततो विहाय ॥५॥

अर्थ— हे प्रभो ! जिसप्रकार क्षीरमहासागरमें विषकी एक बूंदका कुछ-असर नहीं होता उसी प्रकार आपकी पूजन करनेमें तथा मुनियोंको दान देनेमें यद्यपि सामग्री बनाने, रसोई

बनाने आदिमें थोडासा पाप होता है तथापि उसका कुछ असर नहीं होता। वह पाप उस पूजासे वा दानसे ही नष्ट हो जाता हैं। इसलिये भव्य जीवोंको प्रमाद छोडकर मुनियोंको दान देनेमें और भगवानकी पूजा करनेमें सदा अपनी प्रवृत्ति करते रहना चाहिये।

भावा त्रयः सन्ति शरीरभाजां
शुभाशुभौ शाश्वतकश्च शुद्धः।
क्रमेण यत्नैरशुभं विहाय
शुभे प्रवृत्तिं कुरु शुद्धलब्ध्यै ॥६॥
तत्रापि चैवं च शुभे वसेयु-
श्चौरा यथा वन्दिगृहे वसन्ति।
स्थातुं स्वभावे परमे विशुद्धे
कुर्वन्तु भव्याश्च सदा प्रयत्नम् ॥७॥

अर्थ— जीवोंके परिणाम तीन प्रकारके हैं; शुभ, अशुभ और सदा रहनेवाले शुद्धभाव। इनमेंसे अनुक्रमसे यत्नपूर्वक अशुभ भावोंका त्याग कर देना चाहिये और शुद्धभावोंकी प्राप्तिके लिये शुभभावोंमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। उन शुभ परिणामोंको धारण करते हुए इसप्रकार रहना चाहिये जैसे चोर वंदीखानेमें रहता है। चोर वंदीखानेमें रहता हुआ भी उसे त्याज्य समझता है। उसीप्रकार शुभ परिणामोंको धारण

करते हुए भव्य जीवोंको परम विशुद्धस्वभावमें स्थिर रहनेके लिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

शुद्धप्रदौ ते चरणौ विहाय
शुभाशुभेऽहं भ्रमितोस्मि नित्यम्।
युग्मे ततस्ते पतितोऽस्मि शुद्धे
क्षिप्तुं क्रमेणैव शुभाशुभं च ॥८॥

अर्थ— हे भगवन्! आपके चरण कमल शुद्धभावोंको देनेवाले हैं उनको छोड कर ही मैं सदासे आजतक शुभ अशुभ भावोंमें परिभ्रमण करता रहा हूं। हे नाथ! अब इसी लिये मैं अनुक्रमसे शुभ अशुभ भावोंको छोडनेके लिये शुद्ध भावोंको देनेवाले आपके चरण कमलोंमें आ पडा हूं।

श्रीविमलनाथस्तुति।

लक्ष्मीमत्याः सुरम्यायाः श्रीमतः कृतवर्मणः।
वंद्यो विमलनाथश्चाभवद्धि मोक्षराज्यदः ॥१॥

अर्थ— मोक्षके राज्यको देनेवाले और सबके द्वारा वंदनीय भगवान् विमलनाथ अत्यंत मनोहर महारानी लक्ष्मीमती और अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित महाराजा कृतवर्माके पुत्र हुए थे।

स्थानं भवाब्धेर्विषमं हि निंद्यं
त्याज्यं च भव्यैर्नरकस्य बीजम्।
क्षिप्त्वा च संगं द्विविधं त्वया त-
न्नाम्ना गुणैस्त्वं विमलश्च जातः ॥२॥

अर्थ— हे भगवन्! यह दोनों प्रकारका परिग्रह संसार रूपी समुद्रका स्थान है, विषम है, निंद्य है और भव्यजीवोंके द्वारा त्याग करने योग्य है। हे नाथ! आपने ऐसे इन दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया था इसीलिये आप नामसे और गुणसे दोनों प्रकारसे विमल अर्थात् निर्मल होगये हैं।

अन्वेषणार्थं च कलंकमुक्तं
देवं सदाहं भ्रमितोस्मि लोके।

न त्वत्समानश्च कलंकमुक्तः
कुत्रापि लब्धो मयका जिनेन्द्र ॥३॥

अर्थ— हे प्रभो! इस लोकमें मैं दोषरहित देवको ढूंडनेके लिये सदाकालसे परिभ्रमण करता रहा हूं परंतु हे जिनेन्द्र! मैंने आपके समान दोषरहित देव कहीं नहीं पाया।

आनन्दपिण्डेऽप्यचले स्वराज्ये
मोदप्रदे शान्तिरसे च नित्ये ।
ज्ञानात्मके न त्वयि कोपि रागो
द्वेषोपि केनापि कदापि दृष्टः ॥४॥

अर्थ— हे भगवन्! यद्यपि आप आनंदके पिंड हैं, अचल हैं, आत्मस्वरूप हैं, अनंत सुख देनेवाले हैं, शांतिरससे भरपूर हैं, नित्य हैं और अनंत ज्ञानस्वरूप हैं तथापि आपमें न तो कभी किसीने राग देखा है और न कभी किसीने द्वेष देखा है आप रागद्वेष दोनोंसे रहित हैं।

त्वामेव मुक्त्वा भगवन् पदार्थाः
कालेन सर्वे विकृता भवन्ति ।
विचार्य चैवं नु पुनःपुनश्च
मोक्षप्रदे ते पतितोस्मि युग्मे ॥५॥

अर्थ— हे भगवन्! आपको छोडकर बाकीके जितने पदार्थ हैं वे सब समयानुसार बदलते रहते हैं उनमें विकार

होता रहता हैं। इसी बातको बार बार विचार कर मैं मोक्ष देनेवाले आपके चरण कमलोमें आ पडा हूं।

प्रक्षालयित्वा तव पूतपादौ
जातौ करौ मे सफलौ पवित्रौ।
शान्तिप्रदं ते वदनं च दृष्ट्वा
नेत्रे च जाते सफले पवित्रे ॥६॥

अर्थ— हे प्रभो! आपके पवित्र चरण कमलोंका प्रक्षालन कर मेरे ये दोनों हाथ प्रवित्र और सफल होगये हैं तथा अत्यंत शान्ति देनेवाले आपके मुखको देखकर मेरे ये दोनों नेत्र भी पवित्र और सफल होगये हैं।

सौख्यप्रदं ते भवनं च गत्वा
पादौ च जातौ सफलौ पवित्रौ।
स्तोत्रं पठित्वा तव मोक्षदं च
जातं मुखं मे सफलं पवित्रम् ॥७॥

अर्थ— हे नाथ! सुख देनेवाले आपके भवनमें जाकर मेरे ये दोनो चरण सफल और पवित्र होगये हैं तथा मोक्ष देनेवाली आपकी स्तुति पढकर मेरा यह मुह भी सफल और पवित्र होगया है।

दिव्यध्वनिं ते शिवशान्तिदं च
श्रुत्वैव कर्णौ सफलौ पवित्रौ।

अष्टांगनुत्या निखिलं च गात्रं
जातं पवित्रं सफलं च जन्म ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! कल्याण और शान्तिको देनेवाली आपकी दिव्य ध्वनिको सुनकर मेरे ये दोनों कान सफल और पवित्र हो गये हैं तथा आपको अष्टांग नमस्कार करनेसे मेरा यह समस्त शरीर पवित्र होगया है और मेरा यह जन्म भी सफल होगया है ।

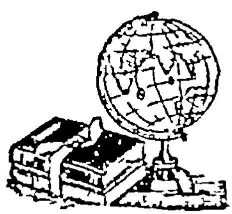

श्रीअनन्तनाथस्तुति ।

राज्ञ्याः सर्व यशायाश्च सिंहसेनस्य भूपतेः ।
जातश्चानन्तनाथो हि नित्यानन्तसुखप्रदः ॥१॥

अर्थ— नित्य और अनंतसुखको देनेवाले भगवान् अनंतनाथ परमदेव महारानी सर्वयशा और महाराजा सिंहसेनके पुत्र हुए थे ।

भयंकरानन्तकुकर्मणां च
ध्यानाग्निना शान्तिशरैश्च तीव्रैः ।
अन्तं हि कृत्वा भुवनेश जातो
स्वनन्तनाथश्च ततस्त्वमेव ॥२॥

अर्थ— हे तीनों लोकोंके स्वामी भगवन् अनन्तनाथ ! आप ध्यानरूपी अग्निसे और अत्यंत तीव्र शांतिरूपी बाणोंसे भयंकर अनंत कर्मोका नाशकर प्रगट हुए हैं । इसीलिये आप अनंतनाथ कहलाते हैं ।

जाता ह्यनन्तस्य सुदर्शनस्य
प्राप्तिर्निजे चात्मनि ते विशुद्धे ।
ज्ञानस्य वीर्यस्य तथा सुखस्य
वानन्तनाथोसि ततस्त्वमेव ॥३॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपके अत्यंत विशुद्ध आत्मामें अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य और अनंत सुखकी प्राप्ति हुई है। हे प्रभो ! इसीलिये आप अनंतनाथ कहलाते हैं।

अनन्तपर्याय चयस्य दृष्टा
ज्ञाता प्रणेता भुवनेशपूज्य ।
अनन्तसौख्यस्य सदैव भोक्ता
ह्यनन्तनाथश्च ततस्त्वमेव ॥४॥

अर्थ— हे तीनो लोकोके इन्द्रोंके द्वारा पूज्य भगवन् अनन्तनाथ ! आप अनंत पर्यायोके समूहको देखनेवाले है, जाननेवाले हैं और निरूपण करनेवाले हैं तथा सदाकाल अनंत सुखको भोगनेवाले हैं। हे देव ! इसीलिये आप अनंतनाथ कहलाते हैं।

त्वत्पादमूले शरणागतेभ्यः
स्वनन्तसौख्यस्य शिवस्य मार्गः ।
त्वया प्रणीतः सुखशान्तिदात्रा
स्वनन्तनाथश्च ततस्त्वमेव ॥५॥

अर्थ— हे भगवन् ! आप सुख और शान्तिको देनेवाले हैं, जो भव्य जीव आपके चरण कमलोंमें शरण आये हुए हैं उनके लिये आपने अनंत सुख देनेवाले मोक्षका मार्ग निरूपण किया है। हे नाथ ! इसलिये भी आप अनन्तनाथ कहलाते हैं।

सदैव वंद्ये तवपादयुग्मे
दृग्बोधवीर्यस्य पतामि हेतोः।
अनन्तसौख्यस्य पदस्य हेतो
र्ध्यायामि गायामि नमामि भक्त्या ॥६॥

अर्थ— हे देव! आपके दोनों चरण कमल सदा वंदना करने योग्य हैं इसीलिये हे नाथ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और अनंत वीर्यकी प्राप्तिके लिये तथा अनन्त सुखको देनेवाले सिद्ध पदकी प्राप्तिके लिये मैं आपके उन दोनों चरण कमलोंमें आ पडा हूं तथा उन्हीं दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्तिके लिये वा सिद्धपदकी प्राप्तिके लिये मैं भक्तिपूर्वक आपका ध्यान करता हूं, आपके यशको गाता हूं और आपको नमस्कार करता हूं।

देवैस्तिरश्चा मनुजैश्चभूतैः
क्रूरैश्च जीवैश्च कुटुम्बवर्गैः।
यन्मे हि दत्तं खलु तीव्रदुःखं
नामापि तस्य प्रतिभाति भीमम् ॥७॥

तद्दुःखतोऽहं भ्रमितो भवाब्धौ
ततश्च पारं भवितुं भवाब्धेः।
त्वत्पादमूले पतितोस्मि भक्त्या
यद्रोचते ते कुरु मे प्रमाणम् ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! देवोने, तिर्यंचोंने, मनुष्योंने, भूतोंने, क्रूर जीवोंने और कुटम्बी लोगोंने जो मुझे तीव्रदुःख दिया है उसका नाम भी इससमय भयंकर प्रतीत होता है। हे प्रभो ! उसी दुःखसे मैं इस ससाररूपी समुद्रमें परिभ्रमण कर रहा हू। अब मैं उसी संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये भक्ति-पूर्वक आपके चरण कमलोमें आ पडा हू। हे नाथ ! आपको जो अच्छा लगे सो करिये। वह आपका किया हुआ कार्य मुझे सर्वथा प्रमाण होगा।

श्रीधर्मनाथस्तुति।

सुव्रतायाः कृपावत्या भानोर्नीतिनिधेः प्रभोः।
धर्मदो धर्मनाथश्च सर्वसिद्धिप्रदोऽभवत् ॥१॥

अर्थ— सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले और धर्मका उपदेश देनेवाले भगवान् धर्मनाथ परमदेव कृपावती महारानी सुव्रता और नीतिके निधि महाराज भानुदेवके पुत्र हुए थे।

कषायमूलानि सुदुःखदानि
कर्माणि सर्वाणि निहत्य शीघ्रम्।
दृग्बोधशीलैश्चरणैस्तपोभि
र्जातोसि वंद्यो भुवि धर्मनाथः ॥२॥

अर्थ— भगवान् धर्मनाथ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान शील चारित्र और तपके द्वारा कषायोंके मूलकारण और महादुःख देनेवाले समस्त कर्मोंको शीघ्र ही नाशकर समस्त संसारके द्वारा वंदनीय होगये हैं।

स्वात्मप्रदेशेषु सदैवलीनान्
दृष्ट्यादिमुख्यान् गुणसंचयांश्च।
परैरचिन्त्यान् सहभाविनश्च
जातोसि लब्ध्वा खलु तेषु तृप्तः ॥३॥

अर्थ— जो अपने आत्माके प्रदेशोंमें सदा लीन रहते हैं, भगवान् जिनेन्द्र देवके भक्तोंके सिवाय अन्य लोग जिनका चिंतवन भी नहीं कर सकते और आत्माके सदा साथ रहते हैं, ऐसे सम्यग्दर्शन आदि मुख्य मुख्य अनन्त गुणोंको पाकर वे भगवान् धर्मनाथ स्वामी उन्हीं गुणोमें तृप्त होगये थे ।

मिथ्यात्वयुक्ताः परधर्मिणो ये
श्वभ्रेनिगोदेऽखिलदुःखदे वा ।
पतन्ति जीवान् परिपातयन्ति
मां पाहि तेभ्यः करुणासमुद्र ॥४॥

अर्थ— हे करुणाके सागर! परधर्मको माननेवाले मिथ्यादृष्टी जीव सब प्रकारके दुःख देनेवाले नरकमें अथवा निगोदमें स्वयं पडते हैं और अन्य जीवोको डालते हैं। हे देव! हे करुणासागर! उन मिथ्यादृष्टीयोंसे मेरी रक्षा कीजिये ।

स्वधर्मदौ ते चरणौ पवित्रौ
यजन्ति ये निर्मलचित्तभव्याः ।
तेषां प्रणीतो निजधर्म एषः
श्रीधर्मनाथेन भवप्रशान्त्यैः ॥५॥

अर्थ— हे भगवन्! आपके चरण कमल परम पवित्र हैं और आत्मधर्मको देनेवाले हैं। ऐसे आपके चरण कमलोंकी जो निर्मल हृदयको धारण करनेवाले भव्य जीव पूजा करते हैं

उनके जन्ममरणरूप संसारको शांत करनेके लिये भगवान् धर्म नाथने ही इस जैनधर्मका निरूपण किया है।

धर्मप्रसादात्सकलश्च जीवाः
संसारसारं धनरत्नराज्यम्।
धर्मानुकूलं च कुटम्बवर्गं
स्वर्गापवर्गं स्वसुखं लभन्ते ॥६॥

अर्थ— उस धर्मके ही प्रसादसे संसारके समस्त जीव संसारभरमें सारभूत धनरत्न और राज्यको पाते हैं, धर्मानुकूल कुटंबको पाते हैं, स्वर्ग मोक्षको पाते हैं और आत्मसुखको प्राप्त होते हैं।

वंद्याश्च पूज्याश्च नरामरेन्द्रैः
ये केपि धर्मे सुमुखा भवन्ति।
निंद्या दरिद्रा विमुखा स्वभावा-
त्कुटम्बहीनाश्चिरदुःखिनश्च ॥७॥

अर्थ— हे देव! जो पुरुष आपके कहे हुए धर्मके अनुकूल चलते हैं, वे स्वभावसे ही इन्द्र चक्रवर्तियोंके द्वारा पूज्य और वंदनीय हो जाते हैं तथा जो पुरुष आपके कहे हुए धर्मसे विमुख होते हैं, वे स्वभावसे ही निंद्य दरिद्री कुटंबरहित और सदाके लिये दुःखी हो जाते हैं।

धर्मस्य चिन्हं स्वपरोपकारो
वस्तुस्वभावः समतापि धर्मः ।
ध्यानोपवासः सुतपो जपोपि
शीलं सुदानं यजनं प्रतिष्ठा ॥८॥
धर्मोस्त्यहिंसा परमोस्त्यचौर्य
त्यागश्च मूर्च्छा मिथुनस्य सत्यम् ।
धर्मोदितं श्रेष्ठदयाप्रधानं
धर्मं सुभव्याः परिपालयन्तु ॥९॥

अर्थ— अपने आत्माका और दूसरे जीवोंका उपकार करना, धर्ममें लगाना धर्मका चिन्ह है अथवा प्रत्येक पदार्थका स्वभाव ही धर्म है, अथवा समता धारण करना भी धर्म है, अथवा ध्यान करना, उपवास धारण करना, श्रेष्ठ तप करना, जप करना, शील पालन करना, दान देना, पूजा करना और प्रतिष्ठा करना आदि सब धर्म है । अथवा अहिंसा परमधर्म है, अचौर्यव्रतका पालन करना परमधर्म है, सत्यव्रतका पालन करना परम धर्म है और मूर्च्छा तथा मैथुनसेवनका त्याग करना अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करना और परिग्रहका त्याग करना भी परमधर्म है । इसप्रकार जिसमें श्रेष्ठ दया ही प्रधान है ऐसा धर्मका स्वरूप जो भगवान् धर्मनाथने निरूपण किया है उसका पालन भव्य जीवोंको सदा करते रहना चाहिये ।

श्रीशान्तिनाथस्तुति ।

ऐराया विश्ववंद्यायाः विश्वसेनस्य भूभृतः ।
शान्तिदः शान्तिनाथश्च जातः स्वर्मोक्षदायकः ॥१

अर्थ— स्वर्गमोक्षके देनेवाले और सबको शान्ति देनेवाले भगवान् शान्तिनाथ परमदेव जगत्के द्वारा वंदनीय महारानी ऐरादेवी और महाराज विश्वसेनके पुत्र हुए थे ।

सम्पूर्णजीवान् वरराजनीत्या
निजात्मतुल्यं प्रतिपाल्य धर्मैः ।
अत्यन्तमान्यश्च विभुः प्रियश्च
शान्तिप्रदोऽभूदिह शान्तिनाथः ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् शान्तिनाथ परमदेव ! आपने श्रेष्ठ राजनीतिसे और धर्मपूर्वक अपने आत्माके समान समस्त प्रजाका पालन किया था और फिर सबके द्वारा अत्यंत मान्य, सबके विभु, सबके प्रिय और इस संसारमें सबको शान्ति देनेवाले होगये थे ।

पुण्यप्रसादाद्भुवि कामदेव-
स्तीर्थंकरोऽभूदिह चक्रवर्ती ।
तास्मिन्भवे त्रीणि पदानि लब्ध्वा
जातोऽसि वंद्यो वरपुण्यमूर्तिः ॥३॥

अर्थ— हे भगवन् ! महापुण्यके उदयसे आप इस संसारमें कामदेव भी थे, तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे। हे प्रभो ! आपने एक ही भवमें तीन पद प्राप्त किये थे। इसीलिये आप सबके द्वारा वदनीय और पुण्यकी श्रेष्ठमूर्ति कहलाते हैं।

भुक्त्वापि षट्खंडमहीं न तृप्तिः
परे पदार्थे न निजात्मवाह्ये ।
विचार्य चैवं विषमाद्धि भोगा-
ज्जातो विरक्तो भवरोगवैद्यः ॥४॥

अर्थ— हे देव ! आपने छहो खंड पृथ्वीका उपभोग किया तथापि किसी भी पर पदार्थमें तृप्ति नहीं हुई और न अपने आत्मासे बाह्य अन्य किसी पदार्थमें तृप्ति हुई। इसी बातको विचार कर आप विषम भोगोंसे विरक्त होगये और इसीलिये आप संसाररूपी रोगके श्रेष्ठ वैद्य कहलाते हैं।

षट्खण्डभूमिं तृणवद्विहाय
ध्यानाग्निना कर्मरिपूंश्च दग्ध्वा ।
श्रीमोक्षलक्ष्म्याश्च पतिः प्रियश्च
त्राता च जातो भवरोगहर्ता ॥५॥

अर्थ— हे नाथ ! अपने इस भरतक्षेत्रकी छहो खंड भूमि तृणके समान छोड दी थी और फिर ध्यानरूपी अग्निसे कर्मरूपी समस्त शत्रुओंको जला दिया था। हे प्रभो ! इसीलिये अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित ऐसी मोक्ष लक्ष्मीके पति

होगये हैं, समस्त जीवोंके रक्षक बन गये हैं और संसाररूपी रोगको हरण करनेवाले होगये हैं।

त्वन्नाममंत्रं स्मरतां जनानां
क्षयादिरोगस्य भगंदरस्य।
दुष्टग्रहाणां विषमप्रकोपः
काये न चित्ते भवति प्रवेशः ॥६॥

अर्थ— हे परमदेव! जो भव्य जीव आपके नामरूपी मंत्रका स्मरण करते हैं, उनके शरीरमें न तो क्षय आदि किसी रोगका प्रवेश होता है और न भगंदर आदि रोगोंका प्रवेश होता है। तथा उनके चित्तमें दुष्टग्रहोंका विषमप्रकोप भी कभी नहीं होता।

त्वद्धर्मतत्वं पठतां जनानां
सर्वांगदेहे सुखशान्तिपूरः।
शंकादिदोषः सुखसंगभीति-
र्मोहादिकर्म प्रपलायते च ॥७॥

अर्थ— हे भगवन्! जो भव्यजीव आपके कहे हुए धर्मतत्वको पढते हैं उनके शरीर और आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सुख और शान्तिका पूर समा जाता है। तथा उनके हृदयसे शंकादिक समस्त दोष भाग जाते हैं, सुखोंके भंग होनेका डर भाग जाता है और मोहनीय आदि समस्त कर्म भाग जाते हैं।

त्वत्तुल्यमूर्तिर्भुवने न दृष्टा
मया न लब्धा सुखशान्तिदात्री ।
ततः कृपाब्धे हि विचार्य चैव-
मानन्ददे ते पतितोस्मि युग्मे ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपकी मूर्ति सुख और शान्तिको देनेवाली है । आपकी मूर्तिके समान इस संसारमें मैने अन्य कोई मूर्ति नहीं देखी और न मैने आपकी मूर्तिके समान अन्य कोई मूर्ति प्राप्त की है। हे कृपासागर ! यही समझकर मैं अत्यंत आनंद देनेवाले आपके चरण कमलोमें आ पडा हूं ।

श्रीकुंथुनाथस्तुति।

श्रीदेव्याः पूज्यवत्याश्च सूर्यनाम्नो जगत्पितुः।
कुंथुनाथो दयामूर्तिः जीवानां प्रतिपालकः ॥१॥

अर्थ— समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले और दयाकी मूर्ति भगवान् कुंथुनाथ देव अत्यंत पूज्य महारानी श्रीदेवी और जगत्के पिता महाराज सूर्यदत्तके पुत्र थे।

योगाद्विधेः षोडश भावनाया-
स्तीर्थंकरोऽभूदिह चक्रवर्ती।
मह्यामुडूनामिव चन्द्रबिम्बं
श्रीकुंथुनाथः शुशुभे प्रजायाम् ॥२॥

अर्थ— हे भगवन्! आप इस संसारमें पुण्यकर्मके निमित्तसे चक्रवर्ती हुए थे और सोलहकारण भावनाओंके चिन्तवन करनेसे तीर्थंकर हुए थे। हे नाथ! इस पृथ्वीपर जिसप्रकार ताराओंमें चन्द्रमा शोभायमान होता है उसीप्रकार कुंथनाथ भगवन्! आप भी इस प्रजामें सर्वोत्कृष्ट शोभायमान हो रहे थे।

साम्राज्यलक्ष्मीं मृदुना करेण
भुक्त्वा वधूवन्मणिरत्नपूर्णाम्।
तस्याश्च लक्ष्म्याश्चपलां प्रवृत्तिं
दृष्ट्वा विरक्तः सुखशान्तिहेतोः ॥३॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपने मणि और रत्नोंसे परिपूर्ण ऐसी इस साम्राज्यलक्ष्मीको धर्मपत्नीके समान कोमल करसे उपभोग किया था। भावार्थ— जिसप्रकार धर्मपत्नीका उपभोग कोमल हाथोंसे किया जाता है उसी प्रकार भगवान् कुंथुनाथने राज्यलक्ष्मीका उपभोग भी बहुत थोडा कर लगा कर किया था। तथा अंतमें उस लक्ष्मीकी चंचल प्रवृत्तिको देखकर नित्यसुख और शांति प्राप्त करनेके लिये उससे वे विरक्त होगये थे।

वैराग्यशस्त्रैः खलकर्मशत्रून्
विजित्य जातः शिवसौख्यदाता।
स्तुत्वा भवन्तं जिनभक्तभव्या
भवन्ति वंद्याश्च नरामरेन्द्रैः ॥४॥

अर्थ— हे भगवन् ! आप वैराग्यरूपी शस्त्रोंसे कर्मरूपी दुष्ट शत्रुओंको जीतकर मोक्षसुखको देनेवाले होगये हैं। हे प्रभो ! भगवान् जिनेन्द्र देवकी भक्ति करनेवाले भव्यजीव आपकी स्तुति करनेसे इन्द्र और चक्रवर्तिओके द्वारा भी पूज्य और वंदनीय हो जाते हैं।

श्रीकुंथुनाथेन दयालुना च
कुंथ्वादिजीव प्रतिपालनाय।
मोक्षप्रदाया भुवने दयायाः
मार्गःप्रणीतः सुखदस्त्वयैव ॥५॥

अर्थ— हे भगवन्! कुंथुनाथ परमदेव! आप अत्यंत दयालु हैं। इसीलिये आपने कुंथु आदि समस्त जीवोंका प्रतिपालन वा रक्षा करनेके लिये इस संसारमें मोक्ष देनेवाली दयाका सुख देनेवाला मार्ग निरूपण किया है।

त्वत्पादयुग्मं स्पृशतां जनानां
दुःस्वप्नदोषाः कफवातजन्याः।
कदापि तेषां न भवन्ति रोगा
देहे न पीडा हृदि कापि चिन्ता॥६॥

अर्थ— हे प्रभो! जो भव्यजीव आपके चरणकमलोंका स्पर्श करते हैं उनके न तो दुःस्वप्नके दोष उत्पन्न होते हैं न उनके शरीरमें कभी वात पित्त कफजन्य कोई रोग होते हैं, न उनके शरीरमें कोई और पीडा होती है और न उनके हृदयमें कोई चिंता उत्पन्न होती है।

त्वन्नाममंत्रो हृदि यस्य तस्य
चिन्तामणिः कल्पतरुश्च दासः।
साम्राज्यलक्ष्मीर्भुवि मुक्तिकन्या
वा कामधेनुर्भवति स्वदासी॥७॥

अर्थ— हे भगवन्! जिनके हृदयमें आपका नामरूपी मंत्र विराजमान रहता है, उनके यहां चिन्तामणि और कल्पवृक्ष दासके समान रहते हैं, तथा छहो खंडकी राज्यलक्ष्मी, मुक्ति-

रूपी कन्या और कामधेनु इस संसारमें उसकी दासीके समान वनी रहती हैं ।

त्वया विनाहं मुनिकुंथुनामा
संसारसिंधौ भ्रमितश्च भीमे ।
कृत्वा कृपां मां भवतो दयाब्धे !
चोध्दृत्य तस्मात्स्वसुखं च देहि ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपके विना मैं कुंथुसागर नामका मुनि इस भयानक संसाररूपी समुद्रमें परिभ्रमण कर रहा हूं । हे दयासागर ! अब आप कृपाकर मुझे इस संसारसागरसे निकालकर शीघ्र ही आत्मसुख दीजिये ।

श्रीअरनाथस्तुति ।

पुण्यवत्याश्च मित्रायाः सुदर्शनधराभृतः ।
अरनाथश्चिदानन्दो जातो लोके प्रजापतिः ॥१॥

अर्थ— इस संसारमें समस्त प्रजाके स्वामी तथा शुद्ध चैतन्यस्वरूप और नित्य आनंदरूप भगवान् अरनाथ अत्यंत पुण्यवती महारानी मित्रा और महाराज सुदर्शनके पुत्र हुए थे।

इच्छानिरोधतपसा स्वगुणैः प्रबोधैः
ध्यानाग्निना प्रबलकर्मरिपून् विजित्य ।
देवैर्नरैररजिनश्च बभूव वंद्यो
मोक्षप्रदः स्वनिधिदः सुखशान्तिदश्च ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् अरनाथ जिनेन्द्रदेव ! आप इच्छाका निरोध करनेरूप तपसे, सम्यग्दर्शनादिक आत्मगुणोंसे सम्यग्ज्ञानसे और ध्यानरूपी अग्निसे कर्मरूपी प्रबलशत्रुओंको जीतकर देव और मनुष्योंके द्वारा वंदनीय होगये हैं, मोक्षके देनेवाले होगये हैं, अपनी आत्मनिधिको देनेवाले होगये हैं और सुखशान्तिको देनेवाले होगये हैं।

कृत्स्ना गुणा अरजिनस्य हि सन्त्यनन्ताः
शान्तिप्रदा अनुपमा अचला अमूल्याः ।

स्तुत्याः सदा स्वसुखदाः परमा अचिन्त्या
भक्त्या तथापि च मया स्तविता जिनेश ॥३॥

अर्थ— हे देव, हे अरनाथ परमदेव ! आपके समस्त गुण अनन्त हैं तथा वे सब गुण शान्तिको देनेवाले हैं, उपमारहित हैं, अचल हैं, अमूल्य हैं, सदा स्तुति करने योग्य हैं, आत्मसुख को देनेवाले हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं और अचित्य हैं। हे जिनेश ! हे नाथ ! तथापि मैंने केवल भक्तिके वशसे ही उन गुणोंकी स्तुति की है।

शक्रोऽपि तांश्च कथितुं न सहस्रवक्त्रैः
शक्तश्च का मम कथा किल तत्र देव ।
भक्त्या तथापि भयदं क्षपितुं सुकर्म
स्वल्पा गुणा जिनविभो ! कथिता मया ते ॥४॥

अर्थ— हे जिन ! हे विभो ! उन गुणोंको कहनेके लिये इन्द्र हजारों मुखोंसे भी समर्थ नहीं हो सकता, फिर भला मेरी तो बात ही क्या है। तथापि हे देव ! मैंने अपने भय देनेवाले कर्मोंको नाश करनेके लिये केवल आपकी भक्तिसे थोडेसे गुण निरूपण किये हैं।

शान्तिप्रदं भवहरं सुखदं क्षमादं
ह्यानन्ददं स्वसुखदं परमं पुमांसम् ।

त्वामेव मोक्षपददं विमलं समर्थं
मन्ये प्रभुं विषहरं वरदं महान्तम् ॥५॥

अर्थ— हे भगवन् ! मैं आपको शान्ति देनेवाले, संसारको नाश करनेवाले, सुख देनेवाले और क्षमागुणको देनेवाले मानता हू । आत्माके आनंदको देनेवाले, आत्मसुखको देनेवाले और परमपुरुष मानता हूं । हे नाथ ! आपको ही मैं मोक्ष देनेवाले, अत्यंत निर्मल और समर्थ मानता हूं तथा सबके प्रभु, विषको हरण करनेवाले, वर देनेवाले और महापुरुष मानता हूं ।

येषां चिरं भवति ते हृदि शान्तिमंत्रः
तेषां वसन्ति न च चेतसि कर्मचौराः ।
व्याधिःक्षुधा तुदति तान्न तृषा न चिन्ता
शंका भयं न विषयस्य धनस्य तृष्णा ॥६॥

अर्थ— हे नाथ ! जिन पुरुषोंके हृदयमें आपका शांतिमंत्र रहता है उनके हृदयमें कर्मरूपी चोर कभी निवास नहीं कर सकते । इसके सिवाय उनको न तो कभी व्याधि सताती है, न क्षुधा सताती है, न प्यास सताती है, न चिंता सताती हैं, न शंका सताती है, न भय सताता है और न विषयोंकी तृष्णा व धनकी तृष्णा सताती है ।

धर्मामृतं हितकरं च तवैव पीत्वा
भव्या जयन्ति विषमं खलु जन्म मृत्युम् ।

राज्यं सुरालयसुखं नवधा सुलब्धिं
कैवल्यजां जिनप! मुक्तिरमां लभन्ते ॥७॥

अर्थ— हे नाथ! जो भव्यजीव सब जीवोंका हित करनेवाले आपके कहे हुए धर्मरूपी अमृतका पान कर लेते हैं वे अत्यंत विषम ऐसे जन्ममरणको अवश्य जीत लेते हैं। तथा हे जिनेन्द्र! वे जीव राज्यको प्राप्त करते हैं, स्वर्गके सुख प्राप्त करते हैं, केवल ज्ञानके साथ उत्पन्न होनेवाली नौ लब्धियोंको प्राप्त होते हैं और मोक्षरूपी स्त्रीको प्राप्त कर लेते हैं।

मूर्तिश्च ते वसतु मे हृदि दर्शनं च
ध्यानं स्तवो हि मननं स्मरणं विचारः।
जन्मान्तरेऽपि सुखदौ चरणौ लभेतां
यावद्भवेन्न सुखदा ननु मोक्षलक्ष्मीः ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् अरनाथ! जबतक मुझे सुख देनेवाली यह मोक्षलक्ष्मी प्राप्त नहीं होती तबतक मेरे हृदयमें आपकी मूर्ति सदा निवास करती रहे, सदा आपका दर्शन होता रहे, सदा आपका ध्यान होता रहे, सदा आपकी स्तुति होती रहे, सदा आपका मनन होता रहे, सदा आपका विचार होता रहे और जन्मजन्मांतरमें सुख देनेवाले आपके दोनों चरणकमल सदा प्राप्त होते रहे।

श्रीमल्लिनाथस्तुति।

प्रजावत्या दयावत्याः कुम्भनाम्नः प्रजापतेः।
कर्मारिविजयी जातो मल्लिनाथो जगद्भटः ॥१॥

अर्थ— कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेवाले और तीनों लोकोंमें एक मात्र योद्धा भगवान् मल्लिनाथ श्रेष्ठ दयाको धारण करनेवाली महारानी प्रजावती और महाराज कुम्भके पुत्र हुये थे।

स्वधर्महीनान् सकलांश्च जीवान्
प्रदर्श्य भोगं सुखदुःखमेव।
कृत्वा त्रिलोकीं स्ववशे स्थितः स
गर्वेण सर्वोपरि कर्ममल्लः ॥२॥

मदान्वितं दुःखमये भवाब्धौ
तं क्षेपकं निर्दयकर्ममल्लम्।
विरागशस्त्रैश्च निहत्य लोके
त्वमेव जातः सुभटस्य नाथः ॥३॥

अर्थ— हे भगवन्! जो जीव अपने आत्मधर्मसे रहित हैं उन सबको इस कर्मरूपी मल्लने भोग वा सुख दुःख दिखला कर तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया है और इसीलिये वह अभिमानके साथ सबका नायक बनकर रह रहा है। हे नाथ!

इस दुःखमय संसार सागरमें सब जीवोंको डालनेवाले निर्दय और महाअभिमानी कर्मरूप मल्लको वैराग्यरूपी शस्त्रसे आपने ही मारा है और इसीलिये आप इस संसारमें समस्त योद्धाओंके स्वामी बनगये हैं।

कर्मारितापं शमितुं समर्था-
स्तवप्रसादाद्धि निजात्मनिष्ठाः।
नरामरेन्द्रा मुनयो बभूवु-
रचिन्त्यरूपो महिमा त्वदीयः ॥४॥

अर्थ— हे भगवन्! इन्द्र, चक्रवर्ती और मुनिराज सब आपके ही प्रसादसे कर्मरूपी शत्रुओंके संतापको शांत करनेके लिये समर्थ हो जाते हैं और अपने आत्मामें तल्लीन हो जाते हैं। हे प्रभो! आपकी महिमा भी अचिंतनीय है, किसीके चिंतनमें नहीं आसकती।

धर्मामृतं ते मधुरं पिबन्तः
त्वद्बीजमंत्रं सुखदं स्मरन्तः।
त्वद्धर्मतत्त्वं सततं पठन्तः
त्वत्पादपद्मौ खलु पूजयन्तः ॥५॥
त्वन्मोक्षमार्गे विमले चरन्तः
त्वद्द्रव्यमूर्तिं हृदि धारयन्तः।
ते भव्यजीवाः सुखदं लभन्ते
स्वर्गापवर्गं सपदि क्रमेण ॥६॥

अर्थ— हे प्रभो! जो लोग आपके अत्यंत मधुर धर्मरूपी अमृतको पीते हैं, सुख देनेवाले आपके नामको कहनेवाले वीजाक्षर मंत्रोंका स्मरण करते हैं, जो लोग आपके कहे हुए धर्मतत्वोंको सदा पढते रहते हैं, जो लोग आपके चरणकमलोंकी सदा पूजा करते रहते हैं, जो जीव आपके निर्मल मोक्ष मार्गमें चलते हैं और आपकी भव्यमूर्तिको हृदयमें सदा धारण करते रहते हैं, वे भव्यजीव अनुक्रमसे शीघ्र ही सुख देनेवाले स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करलेते हैं।

दुष्टैर्नितान्तैः खलकर्ममल्लैः
प्रपीडितो दुःखमये भवाब्धौ।
दुर्गंधदेहे खलु पातितोऽस्मि
तं कर्ममल्लं च विजित्य शीघ्रम् ॥७॥
यथार्थमल्लो भुवि मल्लिनाथो
विचार्य चैवं पतितोऽस्मि भक्त्या।
त्वत्पादपद्मे सुखशान्तिदे च
मां पाहि तेभ्यश्च दयासमुद्र ॥८॥

अर्थ— हे दयाके सागर भगवन् मल्लिनाथ! अत्यंत दुष्ट ऐसे इन कर्मरूपी मल्लोंने मुझे बहुत दुःख दिया है, दुःखरूपी संसारसमुद्रमें पटक दिया है और दुर्गंधमय इस शरीरमें पटक दिया है। हे नाथ! आपने उसी कर्मरूपी महामल्लको जीत लिया है और इसीलिये इस संसारमें यथार्थ मल्ल कहलाते हैं।

हे मल्लिनाथ भगवन् ! यही विचार कर मैं भक्तिपूर्वक सुख और शांति देनेवाले आपके चरणकमलोंमें आ पडा हूं। हे देव! आप उन कर्मोंसे मेरी रक्षा कीजिये।

श्रीमुनिसुव्रतनाथस्तुति ।

पद्मावत्याः क्षमामूर्तेः सुमित्रस्य महीभृतः ।
मुनिसुव्रतनाथश्च जातः सुव्रतदायकः ॥१॥

अर्थ— श्रेष्ठ व्रतोको देनेवाले भगवान् मुनिसुव्रतनाथ क्षमाकी मूर्ति महारानी पद्मावती और महाराज सुमित्रके पुत्र हुए हैं।

राज्यं विहाय जिननाथ ! तपःसुतप्त्वा
मोहादिकर्मनिवहं गुणघातिनं तत् ।
क्षिप्त्वाशु चाप्य नवकेवललब्धिलक्ष्मीं
जातो व्रतेश भुवनत्रय पूजनीयः ॥२॥

अर्थ— हे जिननाथ मुनिसुव्रत परमदेव ! आपने सबसे पहले राज्यका त्याग किया, घोर तपश्चरण किया और गुणोंको घात करनेवाले मोहनीय आदि घातिया कर्मोंको शीघ्र ही नाश कर नवकेवललब्धिरूप लक्ष्मी प्राप्त की। हे व्रतोंके स्वामी

मुनिसुव्रतनाथ ! आप इसीलिये तीनों लोकोंके द्वारा पूजनीय होगये हैं ।

कृत्वा विहारमपि नाथ शुभार्यखण्डे
भव्यान् निरूप्य सुखदं खलु मोक्षमार्गम् ।
जातो जिनेन्द्र मुनिसुव्रतनाथ पूज्यः
इन्द्रादिभिर्मुनिगणैर्नरनायकैश्च ॥३॥

अर्थ— हे नाथ ! फिर आपने शुभ आर्यखंडमें विहार किया और भव्य जीवोंको सुख देनेवाले मोक्षमार्गका निरूपण किया। इसीलिये, हे जिनेन्द्र ! हे मुनिसुव्रतनाथ आप इन्द्रादिक देवोंके द्वारा, असंख्य मुनियोंके द्वारा और चक्रवर्ती आदि अनेक राजाओंके द्वारा पूज्य होगये हैं ।

सर्वाणि कर्मशिखराणि चिदात्मवज्रैः
क्षिप्रं विभेद्य भुवने मुनिसुव्रतोऽभूत् ।
वंद्यः सदैव मुनिनाथ नरामरेन्द्रैः
पूज्यः सुशान्तिसुखदो हृदि चिन्तनीयः ॥४॥

अर्थ— हे प्रभो ! मुनिसुव्रतनाथ ! फिर आपने शुद्ध चैतन्यरूप वज्रसे समस्त कर्मरूपी शिखरोंको शीघ्र ही नाश कर दिया था और इसीलिये आप मुनिनाथ, नरनाथ और इन्द्रादि देवोंके द्वारा वंदनीय होगये हैं, पूज्य होगये हैं, शान्ति और सुख देनेवाले होगये हैं और सबके हृदयमें चिन्तवन करने योग्य होगये हैं।

पूतं व्रतं निरुपमं सुखशान्तिदं च
वंद्यं त्वयैव कथितं परमं विशुद्धम्।
त्वामद्य योगनिपुणा मुनयोपि भक्त्या
स्वर्मोक्षदं भवहरं हृदि धारयन्ति ॥५॥

अर्थ— हे देव! इस संसारमें जो व्रत पवित्र हैं, उपमा रहित हैं, सुख और शांतिको देनेवाले हैं, वदनीय हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं और विशुद्ध हैं, हे प्रभो! वे सब व्रत आपने ही निरूपण किये हैं। इसीलिये योगधारण करनेमें अत्यंत निपुण ऐसे मुनि लोग भी आजतक आपको स्वर्गमोक्षको देनेवाले और संसारको नाश करनेवाले समझकर भक्तिपूर्वक हृदयमे धारण करते हैं।

सिंहासने मणिमये घटिते सुरेन्द्रैः
भामण्डलैर्निरुपमैर्वरदीप्तिपुंजैः।
तिष्ठन् जिनश्च शुशुभे मुनिसुव्रतेशः
पूर्वाचले स्वकिरणैः सविता यथैव ॥७॥

अर्थ— हे जिन! हे मुनिसुव्रतनाथ! हे भगवन्! इन्द्रोंके द्वारा वनाये हुए मणिमयसिंहासनपर विराजमान हुए आप उपमारहित और श्रेष्ठ कांतिके समूहरूप भामंडलसे ऐसे सुंदर शोभायमान हो रहे थे, मानों पूर्वाचल पर्वतपर अपनी किरणोंसे सूर्य ही शोभायमान हो रहा हो।

सच्चामरैरनुपमैर्वरकांतिपुंजैः
शुभ्रैः प्रभो ! शुभतरैरिव पुण्यपूरैः ।
शान्तिप्रदश्च शुशुभे मुनिसुव्रतश्च
क्षीरेण मेरुरिव नाथ ! तवाभिषेके ॥७॥

अर्थ— हे नाथ ! हे प्रभो ! जिसप्रकार अभिषेकके समय मेरुपर्वत क्षीरसागरके जलसे शोभायमान हुआ था, उसी प्रकार अत्यंत शांति देनेवाले भगवन् ! आप पुण्यके समूहके समान अत्यंत शुभ और श्वेत तथा श्रेष्ठ कांतिके समूहके समान, उपमारहित श्रेष्ठ चामरोंसे शोभायमान हो रहे थे ।

छत्रत्रयं कथयति प्रभुतां त्रिलोके
जातं सुवर्णमणिरत्नचयैः पवित्रैः ।
भव्याश्चलन्तु कथयन्निति मोक्षमार्गे
खे दुंदुभिर्ध्वनति भव्यसुखप्रदस्ते ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् ! पवित्र सुवर्णमणि और रत्नोंके समूहसे बने हुए आपके तीनों छत्र तीनों लोकोंमें आपकी प्रभुताको सूचित करते हैं । तथा " भो भव्य जीवो ! तुम लोग मोक्षमार्गमें आकर चलो " इसी बातको सूचित करता हुआ और भव्य जीवोंको सुख देनेवाला यह आपका दुंदुभि आकाश में बज रहा है ।

सान्निध्यतो भगवतस्तरुरप्यशोको
भव्यः सदा गतभयश्च सुखी बभूव ।

ताराततिश्च पतिता सुरपुष्पवृष्टि-
र्याता दिवो हि शुशुभे तव वन्दनाय ॥९॥

अर्थ— हे भगवन् मुनिसुव्रतनाथ! आपकी समीपता पाकर अशोक वृक्ष भी अत्यंत सुंदर, भयरहित और सदाके लिये सुखी होगया है। हे नाथ! ताराओकी पंक्तिके समान जो आकाशसे देवोके द्वारा की हुई पुष्पवृष्टि पड रही है, वह भी ऐसी शोभायमान हो रही है, मानो आपकी वंदना करनेके लिये ही आरही हो।

दिव्यध्वनिर्हितकरो भवरोगहर्ता
स्वर्मोक्षदो निरुपमः सुखशान्तिपुंजः ।
अन्तान्तको निखिलजीववचोऽनुरूपः
भव्यान् नरामरगणांश्च सुखीकरोति ॥१०॥

अर्थ— हे भगवन्! आपकी दिव्यध्वनि सबका हित करनेवाली है, संसाररूपी रोगको नाश करनेवाली है, स्वर्ग मोक्षको देनेवाली है, उपमारहित है, सुख और शान्तिका पुंज है, अन्त अर्थात् मृत्युका भी अन्तक अर्थात् नाश करनेवाली है और समस्त जीवोंकी भाषामय परिणत हो जाती है। हे नाथ! ऐसी आपकी दिव्यध्वनि समस्त भव्यजीवोको तथा देव और मनुष्योको सदा सुखी करती है।

हे शक्रपूज्य! मुनिसुव्रत! सुव्रतैर्यैः
जातस्त्वकं च भुवनत्रयपूजनीयः ।

त्वत्पादपद्मपतितं जिनभक्ति नम्रं
मां देहि नाथ ! कृपया खलु तद्व्रतानि ॥११॥

अर्थ— हे भगवन् ! इन्द्रोंके द्वारा पूज्य मुनिसुव्रतनाथ ! आप जिन व्रतोंको धारण कर तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य होगये हैं, हे नाथ उन्हीं व्रतोंको आपके चरणकमलोंमें पडे हुए और भगवान् जिनेन्द्र देवकी भक्तिसे नम्र हुए मुझे भी कृपाकर अवश्य देदीजिये ।

श्रीनमिनाथस्तुति ।

विप्राया विश्वपूज्याया विजयस्य महीपतेः ।
नमिनाथो दयामूर्तिः प्राणिनां हितचिन्तकः ॥१॥

अर्थ— समस्त प्राणियोंके हितका चितन करनेवाले और दयाकी मूर्ति भगवान् नमिनाथ समस्त संसारके द्वारा पूज्य ऐसी महारानी विप्रा और महाराज विजयके पुत्र हुए थे ।

शान्तिप्रदां शाश्वतमोक्षलक्ष्मीं
भोक्तुं विशुद्धां नमिना विमुक्ता ।

दुःखप्रदा चंचलराज्यलक्ष्मी-
स्त्याज्या हि भव्यैः सुकृतैश्च लब्धा ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् नमिनाथ! आपने अत्यंत शांति देनेवाली और परम विशुद्ध ऐसी सदा रहनेवाली मोक्षलक्ष्मीका उपभोग करनेके लिये वडे पुण्यसे प्राप्त होनेवाली परतु भव्य जीवोंके द्वारा त्याज्य और अत्यंत दुःख देनेवाली ऐसी चंचल राज्यलक्ष्मीका त्याग ही कर दिया था ।

मिथ्यात्वजाले पतितांश्च जीवान-
त्यन्तदीनानवलोक्य तेषाम् ।
उद्धारहेतोर्हृदि भावितश्च
ह्यपापधर्मः सततं त्वयैव ॥३॥

अर्थ— हे भगवन्! जो जीव मिथ्यात्वरूपी जालमें पडकर अत्यंत दीन हो रहे हैं, उन्हें देखकर उनके उद्धार करनेके लिये ही आपने वहुत दिनतक अपायविचय नामके धर्म-ध्यानका अपने हृदयमें चितन किया था ।

इच्छानिरोधं भवनाशकं च
तपो हि कुर्वन् समशान्तितोयम् ।
स्वात्मोत्थचिद्भावरसं पिबंस्त्वं
ध्यानैः सुशुक्लैश्च भयंकराणि ॥४॥

चत्वारि कर्माणि जवेन दग्ध्वा
नरामरेन्द्रैः प्रणुतः स्तुतश्च ।
त्वमेव पूज्यो हृदि चिन्तनीयो
जातोऽसि वंद्यः सुखशान्तिदाता ॥५॥

अर्थ— हे भगवन् ! आपने अपनी समस्त इच्छाओंको रोककर संसारको नाश करनेवाला घोर तपश्चरण किया था, समता और शांतिरूपी जलको पीते हुए तथा अपने आत्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध चैतन्यस्वरूप रसको पीते हुए आपने अपने श्रेष्ठ शुक्लध्यानसे भयंकर चारों घातियाकर्मोंको शीघ्र ही जला दिया था और इस प्रकार आप इन्द्र चक्रवर्ती आदिके द्वारा नमस्कार करने योग्य होगये हैं, स्तुति करने योग्य होगये हैं, पूज्य होगये हैं, हृदयमें चितवन करने योग्य होगये हैं, वंदनीय होगये हैं और सुख शांतिके देनेवाले होगये हैं ।

तद्धर्मतः षोडशभावनातो
बद्धं च तीर्थंकरपुण्यकर्म ।
तस्योदयादेव विभो सुदिव्या
सभा बभौ ते वरदेशना च ॥६॥

अर्थ— हे भगवन् ! उस अपायविचय नामके धर्मध्यानके चितवन करनेसे तथा सोलहकारणभावनाओंके चितवन करनेसे आपने तीर्थंकर नामके पुण्यकर्मका बंध किया था। हे प्रभो ! उसी तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे आपकी वह समवसरण

रूप दिव्यसभा शोभायमान हो रही थी और दिव्यध्वनिरूप आपका श्रेष्ठ उपदेश शोभायमान हो रहा था ।

आसन्नभव्या भुवि यत्र यत्र
प्रभो विहारोपि बभूव तत्र ।
शान्तिप्रदं ते वचनं निशम्य
भव्याश्च लग्ना शिवमोक्षमार्गे ॥७॥

अर्थ— हे प्रभो ! इस पृथ्वीपर जहां जहां निकट भव्य जीव रहते थे वहींपर आपका विहार हुआ था । तथा अत्यंत शांति देनेवाली आपकी 'दिव्यध्वनिको सुनकर भव्यजीव कल्याण देनेवाले मोक्षमार्गमें लगगये थे ।

केचित्सुभव्याश्च समं त्वयैव
मोक्षंगता देव निहत्य कर्म ।
त्वन्मार्गलग्ना विषयाद्विरक्ताः
सुश्रावका वा मुनयो बभूवुः ॥८॥

अर्थ— हे देव ! आपकी दिव्यध्वनिको सुनकर कितने ही भव्यजीव तो अपने सब कर्मोंको नाश कर आपके ही साथ मोक्ष चलेगये थे तथा कितने ही आपके कहे हुए मोक्षमार्गमें लगगये थे, कितने ही विषयोंसे विरक्त होगये थे, कितने ही श्रावक होगये थे और कितने ही भव्यजीव मुनि होगये थे ।

श्रीनेमिनाथस्तुति ।

शिवदेव्याः सुपुत्रोऽस्ति समुद्रविजयप्रभोः ।
पुण्यमूर्तिर्दयासिंधुर्नेमिनाथः सुखप्रदः ॥१॥

अर्थ— अत्यंत सुख देनेवाले, दयाके समुद्र और पुण्यकी मूर्ति भगवान् नेमिनाथस्वामी महारानी शिवदेवी और महाराज समुद्रविजयके सुपुत्र हुए थे ।

श्री नेमिनाथस्य बलं विलोक्य
श्रीकृष्ण चित्तेपि बभूव चित्रम् ।
त्रैलोक्यवीरो वरनेमिनाथ-
स्तस्मै स्वराज्यं प्रददौ मुदा सः ॥२॥

अर्थ— हे भगवन् नेमिनाथ प्रभो ! आपके बलको देखकर श्रीकृष्णके चित्तमें भी आश्चर्य उत्पन्न हुआ था और फिर भी तीनों लोकोंमें एक अद्वितीय शूरवीर भगवन् नेमिनाथ ! आपने बडी प्रसन्नताके साथ अपना राज्य उन्हीं कृष्णको देदिया था ।

मार्गे पशूनां सुविलोक्य बाधां
भिल्लादिजातां च विवाहकाले ।
संसारभोगादभवद्विरक्तः
श्रीनेमिनाथो हरिवंशसूर्यः ॥३॥

अर्थ— हे भगवन् नेमिनाथ स्वामिन्! आप हरिवंशमें सूर्य हैं, आपने विवाहके समय मार्गमें ही भील आदिके द्वारा होनेवाली पशुओंकी बाधाको देखकर संसार और भोगोंसे उदास होकर वैराग्य धारण कर लिया था।

राजीमतीं तामपि राज्यलक्ष्मीं
निजात्मसिध्यै तृणवद्विहाय ।
कर्मारिजालं प्रविभेदनार्थं
गतश्च धीरो गिरनारशैलम् ॥४॥

अर्थ— हे प्रभो! धीरवीर! आपने अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके लिये राजीमतीको और उस राज्यलक्ष्मीको तृणके समान छोड दिया था और फिर कर्मरूपी शत्रुओंके जालको तोडनेके लिये आप गिरनार पर्वतपर चढ गये थे।

घोरातिघोरं परमं विशुद्ध-
मिच्छानिरोधं सुतपश्च कुर्वन् ।
स्थितः स धीरो निजचित्स्वभावे
यथा सुमेरुः खलु मध्यलोके ॥५॥

अर्थ— हे भगवन्! जिसप्रकार मध्यलोकमें मेरुपर्वत अचल होकर विराजमान है, उसीप्रकार सर्वोत्कृष्ट, विशुद्ध और कठिनसे कठिन इच्छा निरोधरूप तपश्चरणको करते हुए धीर वीर आप अपने आत्मस्वभावमें अचल होकर विराजमान होरहे थे।

ध्यानाग्निना कर्मरिपूं श्चदग्ध्वा
श्रीनेमिनाथो भवरोगवैद्यः ।
सिद्धः प्रसिद्धः सकलैश्च वंद्यो
जातो जिनेन्द्रो वर नेमिनाथः ॥६॥

अर्थ— हे भगवन् नेमिनाथस्वामिन् ! आप संसाररूपी रोगको अपूर्व वैद्य हैं, आप अपनी ध्यानरूपी अग्निसे समस्त कर्मरूपी शत्रुओंको जलाकर जिनराज हुए हैं, संसार प्रसिद्ध सिद्ध हुए हैं और सबके द्वारा वन्दना करने योग्य होगये हैं।

विनात्मभावं भवसिंधुमध्ये
दुःखप्रदेऽहं पतितोस्मि देव ।
मां सौख्यदे शुद्धचिदात्मभावे
कृपानिधे स्थापय भव्यभानो ॥७॥

अर्थ— हे देव ! आत्माके शुद्धभावोंकी प्राप्तिके विना मैं अत्यंत दुःख देनेवाले इस संसाररूपी महासागरके मध्यमें पडा हुआ हूं, हे दयानिधि ! हे भव्य जीवोंको मार्ग दिखलाने वाले सूर्य ! आप कृपाकर मुझे सुख देनेवाले आत्माके चैतन्य रूप शुद्धभावोंमें स्थापन कर दीजिये ।

श्रीनेमिनाथं भुविपूज्यपादं
देवाधिदेवं खलु विश्ववंद्यम् ।

आनन्दकन्दं परमं विशुद्धं
ध्यायामि गायामि निजात्मशान्त्यै ॥८॥

अर्थ— हे भगवन् नेमिनाथ स्वामिन्! इस संसारमें आपके चरणकमल पूज्य हैं, आप देवोंमें भी सर्वोत्कृष्ट देव हैं, संसारके द्वारा वंदनीय हैं, आनंदकंद हैं, सर्वोत्तम हैं और परम विशुद्ध हैं। हे नाथ! ऐसे आपका मैं अपने आत्माकी शान्ति प्राप्त करनेके लिये ध्यान करता हू और आपके गुणोंका गान करता हूं।

श्रीपार्श्वनाथस्तुति ।

वामाया विश्ववंद्याया अश्वसेनस्य भूपतेः ।
पार्श्वनाथः प्रजापूज्यो नीतिनिष्ठो जगत्प्रभुः ॥१॥

अर्थ— जो भगवान् पार्श्वनाथस्वामी प्रजाके द्वारा पूज्य हैं, नीतिमें तत्पर हैं और जगत्के प्रभु हैं, वे पार्श्वनाथ संसारके द्वारा पूज्य महारानी वामादेवी और महाराज अश्व-सेनके पुत्र हुए थे।

पुण्योदयाद्यः धरणेन्द्रपूज्यः
सुरेन्द्रवंद्योऽप्यहमिन्द्रवंद्यः ।

नरेन्द्रवंद्योऽपि मृगेन्द्रवंद्यः

श्रीपार्श्वनाथो मुदमातनोतु ॥२॥

अर्थ— जो पार्श्वनाथ भगवान् अत्यंत पुण्यकर्मके उदयसे धरणेन्द्रके द्वारा पूजे गये हैं, देवोंके इंद्रोंके द्वारा पूजे गये हैं, अहमिंद्रोंके द्वारा वंदना किये गये हैं, चक्रवर्ती आदि राजाओंके द्वारा वंदना किये गये हैं और पशुओंके इन्द्रोंके द्वारा भी वंदना किये गये हैं ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी हम सबके लिये आनंद देवें ।

क्षेमं प्रजानां भुवि मंगलं च

कुर्वन् जिनेशो भविकप्रमोदम् ।

श्रीपार्श्वनाथः शुशुभे प्रजासु

तारासु चन्द्रो विमलो यथैव ॥३॥

अर्थ— जिसप्रकार निर्मल चन्द्रमा आनंद मंगल देता हुआ और सबको प्रसन्न करता हुआ ताराओंमें शोभायमान होता है, उसीप्रकार समस्त प्रजामें क्षेम कुशल करते हुए, संसारमें आनंद मंगल करते हुये और भव्यजीवोंको प्रसन्न करते हुए जिनेन्द्रदेव भगवान् पार्श्वनाथस्वामी समस्त प्रजामें शोभायमान हो रहे थे ।

आकाशमार्गात्सहसा पतंतीं

विनाशभूतां प्रविलोक्य ताराम् ।

शरीरभोगाद्वरराज्यलक्ष्म्याः
जातो विरक्तो वर पार्श्वनाथः ॥४॥

अर्थ— आकाशमार्गसे अकस्मात् पडती हुई और नाश होनेवाली ताराको (उल्कापातको) देखकर वे श्रेष्ठ भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी शरीरसे, भोगोंसे और श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मीसे भी विरक्त होगये थे ।

आपृच्छ्य बंधून् सचिवादिवर्गान्
साम्राज्यलक्ष्मीं तृणवद्विहाय ।
निजात्मसाम्राज्यविधातुकामः
इच्छानिरोधं धृतवान् तपश्च ॥५॥

अर्थ— तदनंतर उन पार्श्वनाथ भगवानने अपने सब भाईबंधुआदि कुटुम्बियोंसे पूछा, मंत्री आदि राज्यके लोगोंसे पूछा और तृणके समान विशाल राज्यलक्ष्मीको छोडकर अपने आत्माका साम्राज्य जमानेकी इच्छासे इच्छाको रोकनेरूप घोर तपश्चरण धारण किया था ।

पार्श्वप्रभोस्तत्सरजांसि शीर्षे
क्षिप्तानि दुष्टेन भयंकराणि ।
कृतापि मेघस्य भयंकरैव
पूर्वस्य वैरात्कमठेन वृष्टिः ॥६॥

तथापि चात्मोत्थरसप्रभावात्
न योगतः शान्तिमताश्चचाल।
कल्पान्तवातेन यथा सुमेरुः
श्रीपार्श्वनाथो भगवान् स्वयंभूः ॥७॥

अर्थ— दुष्ट कमठके जीव असुरदेवने पहले जन्मके वैरके कारण मुनिराज भगवान् पार्श्वनाथके मस्तकपर भयंकर गर्म गर्म धूलि फेंकी थी और भयंकर मेघकी वर्षा की थी। तथापि आत्मासे उत्पन्न हुए रसके प्रभावसे अत्यंत शांत मनको धारण करनेवाले वे भगवान् स्वयंभू पार्श्वनाथ स्वामी अपने ध्यानसे रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए थे और कल्पकालके अंत समयमें चलनेवाली महावायुसे भी मेरुपर्वत जिसप्रकार चलायमान नहीं होता उसीप्रकार वे भगवान् उस महा उपसर्गसें भी अचल बने रहे थे।

संपूर्ण कर्माणि निहत्य जातो
नरामरेन्द्रैर्हृदि चिन्तनीयः।
कृपानिधे सौख्यनिधे दयाब्धे
मां पाहि शीघ्रं भवभंगजालात् ॥८॥

अर्थ— हे भगवन्! आप समस्त कर्मोको नाश कर इन्द्र चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंके द्वारा भी हृदयसें चितवन करने योग्य होगये हैं, हे कृपानिधि, हे सुखके निधि और हे दयाके समुद्र इस संसारकी लहरोंके जालसे आप मेरी शीघ्र ही रक्षा कीजिये।

———

श्रीमहावीरस्तुति ।

देव्याः श्रीप्रियकारिण्या सिद्धार्थस्य महीपतेः ।
जगच्चक्षुर्महावीरो दयाधर्मस्य रक्षकः ॥१॥

अर्थ— तीनों लोकोंको देखनेके लिये एक चक्षु और दयाधर्मके रक्षक भगवान् महावीर स्वामी महारानी प्रियकारिणी और महाराज सिद्धार्थके पुत्र हुए थे ।

मिथ्यात्वजाले पतिताश्च जीवान्
मग्नानसूनां खलु हिंसने च ।
विलोक्य तेषां सुदयाद्रचित्तः
उद्धारहेतोर्हृदि चिंतितोऽभूत् ॥२॥

अर्थ— जो जीव मिथ्यात्वके जालमें फंस रहे हैं और प्राणोंकी हिंसा करनेमें मग्न हैं उनको देखकर उनके उद्धार करनेके लिये दयाके कारण अत्यंत द्रवीभूत चित्तको धारण करनेवाले महावीर स्वामी हृदयमें चिंता करने लगे थे ।

जातो विरक्तो भवभोगराज्यात्
कुटुंबवर्गान्निजराज्यहेतोः ।
इच्छानिरोधं सुतपश्चकुर्वन्
स्थितः स धीरः कतिचिद्धि वर्षम् ॥३॥

अर्थ— तदनंतर वे भगवान् अपने आत्माका राज्य-प्राप्त करनेके लिये संसार, भोग, राज्य और कुटंबवर्गसे विरक्त होगये और धीरवीर वे भगवान् इच्छानिरोधरूप श्रेष्ठ तपश्चरणको करते हुए कुछ वर्षतक मुनि अवस्थामें ही ठहरे रहे थे।

कामारिजेता वर बाल्यकाले
कर्मारिजेता निजसौख्यहेतोः।
जातोऽसि वंद्यश्च नरामरेन्द्रै-
स्ततश्च भव्यैर्हृदि चिन्तनीयः ॥४॥

अर्थ— भगवान् महावीर स्वामीने अपने श्रेष्ठ बाल्य कालमें ही कामरूप शत्रुको जीत लिया था और अपना आत्म सुख प्राप्त करनेके लिये कर्मरूप शत्रुओंको जीत लिया था। इसीलिये वे भगवान् इन्द्र चक्रवर्ती आदिके द्वारा वंदना करने योग्य होगये थे और भव्य जीवोंके द्वारा हृदयमें चिंतवन करने योग्य होगये थे।

त्वत्पादयुग्मं सुखशान्तिदं वा
स्वमोक्षदं शास्वत वासदं वा।
मार्गः प्रणीतः शरणागतेभ्य-
स्त्वया प्रभो शास्वतशांतिदश्च ॥५॥

अर्थ— हे प्रभो! आपके चरणकमल सुख और शांति-को देनेवाले हैं, स्वर्ग और मोक्षको देनेवाले हैं और सदा रहनेवाला सिद्धपद देनेवाले हैं, हे नाथ! जो जीव आपके

शरणमें आये हुए हैं उनके लिये आपने सदाके लिये शांति देनेवाले मोक्षका मार्ग निरूपण किया है ।

ये केपि चाष्टादशदोषमुक्ता-
स्त एव देवा हृदि चिन्तनीयाः ।
अनन्यभावैः सुखशान्तिहेतो-
र्भव्यैश्च भक्त्या हृदि धारणीयाः ॥६॥

अर्थ— जो देव भूक, प्यास आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं, वे ही देव भव्यजीवोंको सुख और शांति प्राप्त करनेके लिये अनन्य भावोंसे हृदयमें धारण करने योग्य हैं तथा भक्ति-पूर्वक हृदयमें चिंतवन करने योग्य हैं ।

आप्तप्रणीतं नयमानसिद्धं
सार्वं सुशास्त्रं शिवदेशकं च ।
पठन्ति ये केपि च पाठयन्ति
भवन्ति मुक्ताः सुखिनस्त एव ॥७॥

अर्थ— जो शास्त्र अरहंत तीर्थंकर परम देवके कहे हुये हैं जो नय और प्रमाणोंसे सिद्ध हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं और मोक्षका उपदेश देनेवाले हैं, वे ही श्रेष्ठ शास्त्र कहलाते हैं, ऐसे शास्त्रोंको जो पढते हैं वा पढाते हैं, वे भव्यजीव अवश्य ही मुक्त होते हैं और सदाके लिये सुखी हो जाते हैं ।

निजात्मलीनाः कुलजातिशुद्धाः
निर्ग्रंथलिंगाः भवभोगदूराः ।

ये केऽपि मुक्ता द्विविधैश्च संगै-
र्भव्यैश्च वंद्या गुरवस्त एव ॥८॥

अर्थ— जो गुरु अपने आत्मामें सदा लीन रहते हैं, जो कुल और जातीमें शुद्ध हैं, निर्ग्रंथलिंग धारण करते हैं, संसार और भोगोंसे दूर हैं और अंतरंग बाह्य दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे सर्वथा रहित हैं ऐसे ही गुरु भव्य जीवोंके द्वारा सदा वंदना करने योग्य होते हैं ।

श्रद्धा च भक्तिस्त्रिषु तेषु कार्या
देवत्वशास्त्रत्वगुरुत्वबुध्द्या ।
तेषु प्रवृत्तिः परमार्थबुध्द्या
मोक्षार्थिभव्यैर्निजराज्यहेतोः ॥९॥

अर्थ— मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको अपने आत्माका राज्य प्राप्त करनेके लिये अठारह दोषोंसे रहित देवमें देवबुद्धिसे श्रद्धा और भक्ति करनी चाहिये, आप्तप्रणीत शास्त्रमें शास्त्र समझकर श्रद्धा और भक्ति करनी चाहिये तथा निर्ग्रंथ गुरुमें गुरु समझकर श्रद्धा और भक्ति करनी चाहिये और परमार्थबुद्धिसे इन्हीं देव शास्त्र गुरुमें अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिये ।

ये केऽपि चाष्टादशदोषयुक्ता
ध्रुवं कुदेवा भवदाश्च त्याज्याः ।

नाप्तप्रणीतं शिवदं च यन्न
त्याज्यं कुशास्त्रं च तदेव शीघ्रम् ॥१०॥

अर्थ— जो देव अठारह दोष सहित हैं और जन्ममरण रूप संसारको बढानेवाले हैं, वे कुदेव हैं, उनका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। तथा जो शास्त्र आप्तके कहे हुए नहीं है और मोक्ष देनेवाले नहीं हैं, उनको कुशास्त्र कहते हैं ऐसे कुशास्त्रोंका भी शीघ्र ही त्याग कर देना चाहिये। उनका पठन पाठन कभी नहीं करना चाहिये।

जात्यादिशुद्धा अपि दृष्टिहीना
निजात्मशून्याश्च कषाययुक्ताः।
युक्ताश्चदोषैर्द्विविधैश्च संगै-
स्त्याज्याश्च भव्यैर्गुरवस्त एव ॥११॥

अर्थ— जो गुरु कुलजातिसे शुद्ध होनेपर भी सम्यग्दर्शनसे रहित हैं, आत्मज्ञानसे रहित हैं, कषाय सहित हैं, अठारह दोषोंसे और अतरग बहिरंग परिग्रहोंसे सुशोभित हैं ऐसे गुरु भव्यजीवोंको दूरसे ही त्याग करदेने चाहिये।

श्रद्धा च भक्तिस्त्रिषु नैवकार्या
देवत्वशास्त्रत्वगुरुत्वबुध्द्या।
तेषु प्रवृत्तिर्न सुखार्थिभिश्च
प्राणे गते वा सति पीडिते वा ॥१२॥

अर्थ— सुख चाहनेवाले भव्यजीवोंको अपने प्राण जानेपर भी अथवा चाहे जैसा कष्ट होनेपर भी ऊपर कहे हुए कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुमें देव, शास्त्र, गुरु समझकर कभी श्रद्धान नहीं करना चाहिये, कभी भक्ति नहीं करनी चाहिये और उनमें कभी भी अपनी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये।

त्वयोक्तमेनं वचनं न मत्वा,
कुर्वन्ति भक्तिं त्रिषु ये च मूर्खाः।
पापाश्च दीना निजरत्नहीना
निजात्मशून्याश्च भवन्ति निंद्याः ॥१३॥

अर्थ— हे भगवन्! जो मूर्ख आपके कहे हुए इन वचनोंको नहीं मानते और ऊपर लिखे हुए कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु इन तीनोंकी भक्ति करते हैं, वे मूर्ख हैं, पापी हैं, दीन हैं, अपने रत्नत्रयसे रहित हैं, आत्मज्ञानसे शून्य हैं और निंदनीय हैं।

नश्यन्ति ये केपि सदैव लोके
ते पापिनः क्रोधचतुष्टयाद्धि।
श्रीमोक्षलक्ष्म्याः स्वसुखप्रदायाः
हानिर्भवेच्छान्तिनिधेश्च तस्मात् ॥१४॥

अर्थ— इस संसारमें जो पापी जीव सदा नष्ट होते रहते हैं, वे इस क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंसे ही नष्ट होते हैं। तथा इन्हीं क्रोध, मान, माया, लोभसे शान्तिकी

निधि और सदा सुख देनेवाली मोक्षलक्ष्मीकी हानि होती है । भावार्थ– कषायके कारण ही इस जीवको मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होती ।

भवन्ति ते क्रोध.चतुष्टयाद्धि
दीना दरिद्रा निजबोधहीनाः ।
हिंसापि भीमा भवति प्रकर्षा
ततश्च भव्यै हृदि रोधनीयम् ॥१५॥

अर्थ— हे भगवान् ! इन्हीं क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंके कारण ये जीव दीन दरिद्री होते हैं और आत्मज्ञानसे रहित होते हैं । तथा इन्हीं कषायोंके कारण अत्यंत भयंकर और तीव्र हिंसा होती है । इसीलिये भव्यजीवोंको अपने हृदयमें इन चारों कषायोंकी रोक रखनी चाहिये । अपने हृदयमें कषायोंको उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये ।

यत्रास्ति हिंसा न दयाऽस्ति तत्र
स्वप्नेऽपि धर्मो न दयां विना च ।
स्थितस्ततः क्रोधचतुष्टयं च
यत्रास्ति तत्रास्ति दया न धर्मः ॥१६॥

अर्थ— तथा जहांपर हिंसा होती है वहांपर दया कभी नहीं हो सकती और जहांपर दया नहीं होती वहांपर स्वप्नमें भी कभी धर्म नहीं हो सकता । इसप्रकार यह बात निश्चित हो जाती है कि जहांपर क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं, वहांपर दयारूप धर्म कभी नहीं होसकता ।

सुप्राणिनां कौ परिपालनार्थं
स्वर्मोक्षदोऽयं क्रियते हि धर्मः।
मोक्षार्थिभव्यैरसुहिंसने च
स्वप्ने प्रवृत्तिर्न कदापि कार्या ॥१७॥

अर्थ— इस संसारमें प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये ही स्वर्गमोक्ष देनेवाला इस दयाधर्मका पालन किया जाता है। इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्यजीवोंको स्वप्नमें भी प्राणियोंकी हिंसा करनेमें अपनी प्रवृत्ति कभी नहीं करनी चाहिये।

विचारशून्यैश्च तथापि हिंसा
धर्मार्थकार्ये क्रियते हि मूर्खैः।
क्रमेण गच्छन्ति ततो भवन्ति
दीना दरिद्रा नरकं निगोदम् ॥१८॥

अर्थ— इतना समझकर भी जो लोग विचार रहित हैं और मूर्ख हैं, वे लोग धर्मार्थ कार्योंमें हिंसा करते हैं अर्थात् देवी-देवताओंपर बलि चढाते हैं, वा यज्ञादिकमें हिंसा करते हैं, ऐसे नासमझ लोग अनुक्रमसे नरक निगोदमें जाते हैं और फिर वहांसे निकलकर दीन दरिद्री होते हैं।

भावेन येनैव भवेद्धि कोपो
हिंसापि भावेन भवेद्धि तेन।

भावेन येनैव भवेद्धि मानो
हिंसापि भावेन भवेद्धि तेन ॥१९॥
भावेन येनैव भवेद्धि माया
हिंसापि भावेन भवेद्धि तेन ।
भावेन येनैव भवेद्धि लोभो
हिंसापि भावेन भवेद्धि तेन ॥२०॥

अर्थ— आत्माके जिन परिणामोंसे क्रोध होता है, उन्हीं परिणामोंसे हिंसा भी अवश्य होती है तथा जिन परिणामोसे मान होता है उन्हीं परिणामोंसे हिंसा होती है। इसी प्रकार आत्माके जिन परिणामोसे माया होती है, उन्हीं परिणामोंसे हिंसा होती है और आत्माके जिन परिणामोंसे लोभ होता है उन्हीं परिणामोंसे हिंसा अवश्य होती है।

दूरे हि चास्तां परपीडनं च
भावोऽपि हिंसा परपीडनस्य ।
उक्तास्त्यहिंसैव निजात्मवासः
परात्मवासो नियमेन हिंसा ॥२१॥

अर्थ— दूसरे जीवोंको पीडा देनेकी बात तो अलग है, दूसरे जीवोंको पीडा देनेके परिणाम होनेसे ही हिंसा अवश्य हो जाती है। इसीलिये भगवान् जिनेन्द्रदेवने अपने आत्मामें निवास करना अहिंसा बतलाई है और आत्माको छोडकर कषायोंमें निवास करना हिंसा बतलाई है।

मातास्त्यहिंसैव पिताप्यहिंसा
सखास्त्यहिंसा तनयोप्यहिंसा ।
भ्रातास्त्यहिंसा वररक्षकत्वा-
द्भार्याप्यहिंसैव सुखस्य योगात् ॥२२॥

अर्थ— इस संसारमें माता भी अहिंसा ही है, पिता भी अहिंसा ही है, मित्र भी अहिंसा ही है और पुत्र भी अहिंसा ही है। अहिंसा ही इस जीवकी अच्छीतरह रक्षा करती है इसलिये भाई भी अहिंसा ही है और इस संसारमें सुख देनेवाली भी अहिंसा ही है इसलिये सहधर्मिणी भी अहिंसा ही है।

त्वयाप्रणीतं ननु सर्वमेतत्
सर्वेषु धर्मेषु दयाप्रधानः ।
धर्मोस्त्यहिंसैव यथार्थरूपः
श्रेष्ठश्च पूज्यो हृदि धारणीयः ॥२३॥

अर्थ— हे भगवन् महावीर स्वामीन्! यह सब कथन आपने ही निरूपण किया है तथा सब धर्मोंमें दयाप्रधान अहिंसाको ही धर्म बतलाया है। हे प्रभो! यही आपका कहा हुआ धर्म यथार्थ है, श्रेष्ठ है, पूज्य है और हृदयमें सदा धारण करने योग्य है।

त्वमेव देवः परमः प्रसन्न-
स्तवैव वाणी भवनाशिनी च ।

तवैव मार्गः शिवसौख्यदर्शी
तवैव तीर्थं भवनाशकं च ॥२४॥

अर्थ— हे भगवन्! इस संसारमें आप ही अत्यंत निर्मल और सर्वोत्कृष्ट देव हैं, आपकी ही वाणी जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेवाली है, तथा आपका ही कहा हुआ मार्ग मोक्षसुखको दिखानेवाला है और आपका ही कहा हुआ तीर्थ वा मत पंचपरावर्तनरूप संसारको नाश करनेवाला है।

वंद्योऽमरेन्द्रैश्च महान् सुवीरो
वीरोऽतिवीरः खलु वर्धमानः ।
श्रीसन्मतिः सन्मतिदायको वा
मां पाहि शीघ्रं विषमाद्भवाब्धेः ॥२५॥

अर्थ— जो भगवान् महावीर स्वामी इन्द्रोंके द्वारा वंदनीय हैं, जो महान् सुवीर अर्थात् महावीरके नामसे प्रसिद्ध हैं, वीरनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं, अतिवीरके नामसे प्रसिद्ध हैं, वर्धमानके नामसे प्रसिद्ध हैं और सन्मतिके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा वास्तवमें जो सन्मतिको देनेवाले हैं, वे भगवान् महावीर स्वामी इस संसाररूपी विषम समुद्रसे शीघ्र ही मेरी रक्षा करे।

॥ इति ॥

प्रशस्तिः ।

न्यायं नयं व्याकरणं न छन्दो
जानाम्यलंकारविशेषशास्त्रम् ।
तथापि भक्त्या भवनाशकं च
स्वर्मोक्षदं स्तोत्रमिदं पवित्रम् ॥१॥
विद्यागुरोरेव सुधर्मनाम्नः
संपूज्यमूर्तेः कृपया मया हि ।
श्रीकुंथुनाम्ना मुनिना स्वबुध्द्या
कृतं मनोज्ञं निजराज्यहेतोः ॥२॥

अर्थ— मैं श्रीकुंथुसागर नामका मुनि न तो न्याय शास्त्रको जानता हूं, न नयोंके शास्त्रको जानता हूं, न व्याकरण जानता हूं, न छंदःशास्त्र जानता हू और न अलंकारके विशेष-शास्त्रोंको जानता हू । तथापि जिनकी मूर्ति वा शरीर अत्यंत पूज्य है ऐसे मेरे विद्यागुरु मुनिराज सुधर्मसागरकी कृपासे मैंने अपने आत्माका राज्य प्राप्त करनेके लिये भगवान् चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी भक्तिसे प्रेरित होकर अपनी बुद्धिके अनुसार अत्यंत मनोहर, पवित्र, स्वर्गमोक्ष देनेवाला और जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेवाला यह स्तोत्र बनाया है ।

ध्यायन्ति चित्ते च नमन्ति भक्त्या
श्रृण्वन्ति ये केपि पठन्ति नित्यम्।
षट्खंडराज्यं च चिरं सुभुक्त्वा
स्वर्गापवर्गं स्वसुखं लभन्ते ॥३॥

अर्थ— जो कोई भव्यजीव अपने हृदयमें इस स्तोत्रका ध्यान करते है, भक्तिपूर्वक इसको नमस्कार करते हैं, सदा सुनते हैं वा पढते हैं वे छहों खंडोंके राज्यको चिरकालतक भोग कर स्वर्गमोक्षको तथा आत्मसुखको प्राप्त होते हैं।

चतुर्विंशतिशतेऽब्दे द्विषष्ठ्यधिकवत्सरे।
वीरे मोक्षं गते पूर्णे कार्तिके चेडरे पुरे ॥४॥
शान्तिसागरशिष्येण कुंथुसागरयोगिना।
कृतं पूर्णमिदं स्तोत्रं शंभवस्वामिमंदिरे ॥५॥

अर्थ— भगवान् महावीर स्वामीके मोक्ष जानेके बाद चौवीससौ बासठवें वर्षमें कार्तिक शुक्ला पौर्णिमाके दिन ईडर नगरमें श्री शंभवनाथके चैत्यालयमें आचार्य श्री शांतिसागरके शिष्य मुनिराज श्रीकुंथुसागरने यह स्तोत्र पूर्ण किया है।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतिःसमाप्ता।

॥ श्रीशान्तिसागराय नमः ॥

मुनिश्रीकुंथुसागरविरचिता

आचार्यश्रीशांतिसागरस्तुतिः ।

श्रेष्ठजातिकुलोत्पन्नो निर्ग्रंथो दोषदूरगः ।
स्वांतलीनः सदानन्दो दशधर्मपरायणः ॥१॥
स्वाध्यायध्यानधर्मेषु भव्यानां स्थितिकारकः ।
प्रभावनाविधौ दक्षः सर्वेषां दुःखहारकः ॥२॥
निःशल्यो निर्मदः शान्तो जीवानां प्रतिपालकः ।
निन्दास्तुतौ वियोगे च समतारसतत्परः ॥३॥
षट्त्रिंशत्सुगुणैर्युक्तो मुनिवृन्दनमस्कृतः ।
द्रव्यक्षेत्रानुसारेण प्रायश्चित्तविधायकः ॥४॥
सदाधीरः क्षमावीरो दयालुर्भक्तवत्सलः ।
शान्तिसिंधुर्दयामूर्तिस्तत्त्वज्ञानपरायणः ॥५॥
पूतात्मा सकलैः पूज्यः स्तुत्यात्मा योगतत्परः ।
मुनीनां श्रावकाणां च चारित्रप्रविधायकः ॥६॥
येन स्वस्य विहारेण सर्वे विघ्नाः शमीकृताः ।
अत एव सदा वंद्य आचार्य शान्तिसागरः ॥७॥

शान्तिसागरशिष्येण कुंथुसागरयोगिना ।
भवबीजविनाशाय स्तोत्रमेतत्कृतं मया ॥८॥

अर्थ— जो शांतिसागर स्वामी श्रेष्ठ जाति और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए हैं, जो चौवीस प्रकारके परिग्रहोसे रहित हैं, समस्त दोषोंसे रहित हैं, अपने आत्मामें लीन हैं, आत्मासे उत्पन्न हुए आनंदमें जो सदा मग्न हैं, उत्तम क्षमा आदि दशों धर्मोंके पालन करनेमें जो सदा तत्पर हैं, जो भव्य जीवोंको स्वाध्याय, ध्यान, धर्ममें स्थिर करनेवाले हैं, जो जैनधर्मकी प्रभावना करनेमें अत्यंत निपुण हैं, जो सब जीवोंके दुःख दूर करनेवाले हैं, जो माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीनों शल्योंसे रहित हैं, अभिमानसे रहित हैं, अत्यंत शांत हैं, समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले हैं, जो निंदा, स्तुति वा संयोग वियोगमें सदा समतारसमें लीन रहते हैं, जो आचार्योंमें होनेवाले छत्तीस गुणोंसे सुशोभित हैं, समस्त मुनियोंका समूह जिनको नमस्कार करता हैं, जो द्रव्य क्षेत्रके अनुसार प्रायश्चित्त देते हैं, जो सदा धीरवीर रहते हैं, जो क्षमा धारण करनेमें शूर वीर रहते हैं, जो दयालु हैं, भक्तोंमें प्रेम करनेवाले हैं, जो शान्तिके समुद्र हैं, दयाकी मूर्ति हैं, जो तत्त्वज्ञानमें सदा लीन रहते हैं, जिनका आत्मा परम पवित्र हैं, सब लोग जिनकी पूजा करते हैं, जिनका आत्मा स्तुति करने योग्य है, जो ध्यान धारण करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, जो मुनि और श्रावकोंके चारित्रको निरूपण करनेवाले हैं और जिन्होंने भारतवर्षमें सब जगह

विहार कर सदाके लिये सब विघ्न शांत कर दिये हैं ऐसे आचार्य शान्तिसागर इन्हीं सब गुणोंके कारण सदा वन्दनीय कहे जाते हैं । उन्हीं आचार्य शांतिसागरके शिष्य मुझ कुंथुसागर मुनिने अपने जन्ममरणरूप संसारके समस्त कारणोंको नष्ट करनेके लिये यह आचार्य शांतिसागरका स्तोत्र बनाया है ।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

मुनिराज श्रीकुंथुसागरविरचित

आचार्यश्रीशान्तिसागरका

संक्षिप्त

जीवनचरित्र।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

मुनिराज श्रीकुंथुसागरविरचित

— संक्षिप्त —

आचार्यश्रीशान्तिसागर जीवनचरित्र।

नमस्कृत्य जिनं शान्तिं सूरिं श्रीशान्तिसागरम्।
वैराग्यवर्द्धकं वक्ष्ये गुरुवर्यचरित्रकम् ॥१॥

अर्थ— मैं सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथको नमस्कार करता हूं और आचार्य श्री शान्तिसागरको नमस्कार करता हूं। तदनंतर मैं अपने गुरुवर्य आचार्य शांतिसागरका वैराग्य बढानेवाला जीवन चरित्र कहता हूं।

शान्तिसागरयोगीन्द्रचरितं पापनाशकम्।
पूतं भव्यजनानन्ददायकं बोधवर्द्धकम् ॥२॥

अर्थ— आचार्य शांतिसागरका जीवनचरित्र पापोंको नष्ट करनेवाला है, अत्यंत पवित्र है, भव्यजीवोंको आनंद देनेवाला है और सम्यग्ज्ञानको बढानेवाला है।

असंख्यातेषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपो वरो मतः।
तत्रापिमा भारतक्षेत्रस्यार्यखण्डं मनोहरम् ॥३॥

अर्थ— असंख्यात द्वीपोंमें यह जम्बूद्वीप सबसे श्रेष्ठ है उसमें भी भरतक्षेत्र और भरतक्षेत्रमें भी आर्यखण्ड अत्यंत मनोहर है।

तत्रापि बहवो देशा धर्मकर्मपरायणाः ।
किन्तु दक्षिणदेशश्च श्रेष्ठो धर्मप्रपालकः ॥४॥

अर्थ— उस आर्यखण्डमें धर्मकर्ममें तत्पर रहनेवाले बहुतसे देश हैं किंतु धर्मको पालन करनेवाला दक्षिणदेश सबसे श्रेष्ठ है ।

तत्र भोजपुरं ग्रामं बेलग्रामसमीपगम् ।
सुन्दरं श्रीजिनागार शिखरैः सद्ध्वजैरपि ॥५॥

अर्थ— उस दक्षिणदेशमें वेलगांवके समीप एक भोजपुर नामका गांव है । वह गांव जिनभवनोंके शिखरोंसे तथा श्रेष्ठ ध्वजाओंसे बहुत ही सुंदर जान पडता है ।

धान्यादिशोभितैः क्षेत्रैर्वृक्षैः परमसुन्दरैः ।
उच्चैर्धरैरुदकभृन्नदीभिश्चित्तहारकम् ॥६॥

अर्थ— वह भोजपुर गांव धान्यादिकसे सुशोभित होनेवाले खेतोंसे, अत्यंत सुदर वृक्षोंसे, ऊंचे ऊंचे पर्वतोंसे और जलसे भरी हुई नदियोंसे सब जीवोंके चित्तको हरण करता है ।

तस्मिन् भोजपुरेप्यस्ति शुद्धजातिश्चतुर्थिका ।
मोक्षमार्गरता नित्यं धर्मकर्मपरायणा ॥७॥

अर्थ— उस भोजपुरमें एक चतुर्थ नामकी शुद्ध जाति रहती है । वह जाति सदा मोक्षमार्गमें लीन रहती है और धर्मकर्ममें तत्पर रहती है ।

तत्र पाटीलकुलजो विख्यातो भुवि सुंदरः।
भीमगौडः सुधर्मज्ञो जिनपूजापरायणः ॥८॥

अर्थ— उस चतुर्थ जातिमें एक भीमगौडा नामके भूमिपति थे, जो पाटीलकुलमें उत्पन्न हुए थे, संसारमें प्रसिद्ध थे, सुदर थे, श्रेष्ठ जिनधर्मके जानकार थे और जिनपूजा करनेमें सदा तत्पर रहते थे।

तस्य पत्नी प्रिया जाता श्रेष्ठपुत्रप्रदा सती।
नाम्ना सत्यवती रम्या वरभाग्यवती परा ॥९॥

अर्थ— उसकी धर्मपत्नीका नाम सत्यवती था, वह सत्यवती अत्यंत प्रिय थी, श्रेष्ठ पुत्रोंकी जननी थी, अत्यंत शीलवती थी, मनोहर थी, सौभाग्यवती थी और सबसे श्रेष्ठ थी।

चत्वारश्च तयोः पुत्रा जातास्ते पुण्यशालिनः।
देवगौड आदिगौडः सातगौडस्तृतीयकः ॥१०॥

कुम्भगौडश्चतुर्थोऽस्ति सर्वे धर्मपरायणाः।
तेषु श्रीसातगौडाख्यः पुत्रो नरशिरोमणिः ॥११॥

अर्थ—उन दोनोंके चार पुत्र हुए थे, देवगौडा, आदिगौडा, सातगौडा और कुम्भगौडा उनके नाम थे। ये सब पुत्र पुण्यात्मा थे और धर्ममें तत्पर थे। इन चारोंमें भी तीसरा सातगौडा नामका पुत्र सब मनुष्योंका शिरोमणी है।

वीरे मोक्षं गते कालेऽष्टनवत्यधिके शुभे ।
त्रयोविंशतिशतेऽब्दे षष्ठ्यां जातस्तृतीयतुक् ॥१२
आषाढकृष्णपक्षे च शुभलग्ने शुभे ग्रहे ।
चरित्रनायकः श्रीमान् दयालुः सातगौडकः ॥१३

अर्थ— भगवान् वर्धमान स्वामीके मोक्ष जानेके बाद शुभसंवत् तेईससौ अठानवेके आषाढ शुक्ला षष्ठीके दिन शुभलग्न और शुभ ग्रहोंके होते हुए, तीसरा पुत्र जो इस चरित्रका नायक श्रीमान् दयालु सातगौडा उत्पन्न हुआ था।

वृषाद्धि सातगौडोऽयं भावी श्रीशान्तिसागरः ।
जिनधर्ममहाकाशचन्द्रो मिथ्यात्वनाशकः ॥१४

अर्थ— धर्मके प्रभावसे यही सातगौड पुत्र आगे चलकर शांतिसागरके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, जो कि मिथ्यात्वको नाश करनेवाले हैं और जिनधर्मरूपी महा आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित होते हैं।

बालसूर्यो यथाभाति प्राच्यामतिप्रभाव्रजः ।
सातगौडो तथा चासीद्दक्षिणेपि मनोहरः ॥१५

अर्थ— जिसप्रकार पूर्वदिशामें उदय होता हुआ अत्यंत प्रभाका समूहरूप बालसूर्य शोभायमान होता है, उसीप्रकार अत्यंत मनोहर ऐसा यह सातगौडा दक्षिण दिशामें शोभायमान होरहा था। अथवा दक्षिण दिशामें जाकर जिसप्रकार सूर्य

सबको मनके हरण करनेवाला हो जाता है उसीप्रकार सातगौडा भी दक्षिण दिशामें रहकर सबके मनको हरण करता था।

यथाभूत्तरुणो भानुस्तथा चरित्रनायकः।
तापकारी रविः किन्तु शान्तः श्रीसातगौडकः॥१६

अर्थ— दो पहरके समय जिसप्रकार तरुण अवस्थाको धारण करनेवाला सूर्य दैदीप्यमान होता है, उसीप्रकार हमारे चरित्रनायक सातगौड भी तरुण अवस्थामें अत्यंत दैदीप्यमान होते थे। अंतर केवल इतना ही था तरुण अवस्थामें सूर्य संताप देनेवाला होता है और हमारे चरित्रनायक सातगौड अत्यंत शांत थे।

यजने याजने दक्षो निजात्ममार्गशोधकः।
स्वाध्यायध्यानयुक्तश्च परोपद्रवनाशकः॥१७॥
दीनानाथजनव्याधिदुःखदारिद्रनाशकः।
इत्येवं गमयन्कालं धर्मराज इवाबभौ॥१८॥

अर्थ— वह सातगौड पाटील भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करने करानेमें चतुर था, अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपकी तलाशमें था, स्वाध्याय ध्यानमें तत्पर था, दूसरोंके उपद्रवोंको नाश करनेवाला था, तथा दीन और अनाथ जीवोंके व्याधि दुःख दरिद्रता आदिको नाश करनेवाला था। इसप्रकार धर्मराजके समान कालको व्यतीत करता हुआ वह पिताके घर रह रहा था।

देवेन रोधितेनापि प्रभोः पित्रा कृतस्तदा ।
विवाहः पितुराज्ञेति स्वीकृतः शिरसा वरम् ॥१९

अर्थ—यद्यपि सातगौडने अपने पितासे बहुत निषेध किया था, तथापि पिताने इनका विवाह कर ही दिया था। इन्होंने पिताकी यह आज्ञा मस्तकपर धारणकर स्वीकार कर ली थी।

तस्यां तथापि वांच्छैव स्वप्नेपि न प्रभो रभूत् ।
जगद्गुरुर्भवेच्छीघ्रमिति लोकस्य चिन्तया ॥२०॥

. अर्थ— ये सातगौड शीघ्र ही जगत्गुरु बने इस प्रकार की लोगोंकी चिंतासे ही क्या मानो उस धर्मपत्नीकी ओर सातगौडकी स्वप्नमें भी कभी इच्छा नहीं हुई थी।

ज्ञात्वा भार्या गता स्वर्गमित्ययं सातगौडकः ।
निजात्मशोधको जातः स्वरसस्वादकोपि च ॥२१

अर्थ— मेरी पत्नीका स्वर्गवास होगया है, इन समाचारोको जानकर सातगौड पाटील अपने आत्माकी तलाशमें लग गये और अपने आत्मासे उत्पन्न हुए रसका आस्वादन करने लगे।

अनादि भवभोगेभ्यो बंधुवर्गाच्छरीरतः ।
सातगौडो विरक्तोऽभूदात्मधर्मप्रकाशकः ॥२२॥

अर्थ— वह सातगौडपाटील अनादि कालसे चले आये संसारसे, भोगोसे, भाईबंधुओंसे तथा शरीरसे विरक्त होगये

और आत्माके धर्मको प्रकाशित करनेवाले होगये ।

दीक्षां गृह्णाम्यहं भावमिति प्रदर्शयन् विभुः ।
पित्रा निषिद्धःस्वागारे स्थितोतः कतिचिद्दिनम् ॥

अर्थ— तदनंतर सातगौड पाटीलने मैं अब दीक्षा लेता हूं ऐसे अपने भाव प्रगट किये परंतु पिताने निषेध कर दिया इसलिये वे थोडे दिनतक अपने घरमें ही बने रहे।

सत्सु प्राणेषु धर्मश्च त्याज्यो नेत्युपदिश्य च ।
पिता स्वर्गंगतः श्रीमान् भीमगौडः सुधार्मिकः ॥

अर्थ— परम धार्मिक श्रीमान् पाटील भीमगौडने अपने अंतिम समयमें अपने पुत्रोंको उपदेश दिया कि तुम लोग प्राण जानेपर भी अपने धर्मका मत छोडना इसप्रकार उपदेश देकर वे स्वर्गको चले गये ।

शोकाकुलान् स्वबंधूश्च मातरं शोकव्याकुलाम् ।
स्वोपदेशेन संबोध्य कृताः सर्वे निराकुलाः ॥२५॥
आपृच्छय सर्वस्वजनान् मित्रवर्गान् स्वधार्मिकान् ।
वैराग्यमूर्तिः सौम्यात्मा गुरुवासं गतस्तदा ॥२६

अर्थ— उससमय उनके सब भाई शोकसे व्याकुल हो रहे थे माता शोकसे व्याकुल हो रही थी, उन सबको सातगौड पाटीलने अपने श्रेष्ठ उपदेशसे समझाया और सबको निराकुल किया । तदनंतर अत्यंत शांत और वैराग्य की मूर्ति पाटील

सातगौड अपने सब कुटुंबी लोगोंको मित्रवर्गोंको तथा धर्मात्मा भाईयोंकों पूछकर गुरुके आश्रममें पहूंचे ।

चतुर्विंशतिशते चत्वारिंशदधिके शुभे ।
वीरे शिवंगते प्राप्तः श्रीदेवेन्द्रगुरुं गृहात् ॥२७॥
ज्येष्ठशुक्ला त्रयोदशां गृहीत्वा क्षुल्लकव्रतम् ।
गुरूपकण्ठे स्थितवान् क्षुल्लकः कतिचिद्दिनम् ॥२८

अर्थ— वीरनिर्वाण शुभसवत् चौवीस सौ चालीसमें वह पाटील सातगौड अपने घरसे चलकर श्रीदेवेन्द्रगुरुके समीप पहुचे और ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीके दिन उन्होने क्षुल्लकके व्रत धारण किये । तदनंतर वे क्षुल्लक कुछ दिनतक अपने गुरुके समीप रहे ।

पुनर्निजगुरुं नत्वापृच्छय संसारतारकः ।
गुरोराज्ञां समादायाचलत्ततः सुखप्रदः ॥२९॥

अर्थ— तदनंतर सब जीवोको सुख देनेवाले और संसारसे पार कर देनेवाले उन क्षुल्लकने अपने गुरुको नमस्कार किया और गुरुकी आज्ञा लेकर वहांसे चले ।

प्रकुर्वन् विधिनाचार्यामुपसर्गं सहन् तथा ।
भव्यानां बोधनार्थं हि कागलं नगरं गतः ॥२९॥

अर्थ— विधिपूर्वक चर्या करते हुए और उपसर्ग सहते हुए वे क्षुल्लक भव्यजीवोंको सदुपदेश देनेके लिये कागल नगरमें पहुंचे ।

पुरे वने सदा ध्यानं कुर्वन् संबोधयन् जनान्।
द्योतयन् जिनधर्मं हि गच्छतिस्म पुरः शनैः ॥३०॥

अर्थ— वे क्षुल्लक नगर वा वनमें ध्यान करते हुए, लोगोंको उपदेश देते हुए और जिनधर्मकी प्रभावना करते हुए धीरे धीरे आगे चले।

संघस्य पुण्यतः सोयं कोगनोलिपुरं गतः।
संयमाढ्यं वरं क्षेत्रं जनान् ज्ञात्वा च धार्मिकान्।३१
वर्षायोगं च कृतवान् कदाचिन्नगरे क्वचित्।
गुहायामाश्रमे ध्यानं कुर्वन् संबोधयन् स्थितः ॥३२

अर्थ— संघके पुण्यकर्मके उदयसे वे क्षुल्लक कोगनोलि गांवमें गये। उस गांवमें संयमी लोग रहते थे और धर्मात्मा रहते थे इसप्रकारके उस क्षेत्रको उत्तम समझकर उन क्षुल्लकने वहीं पर वर्षायोग धारण किया। उससमय वे कभी तो नगरमें बैठकर ध्यान करते थे, कभी किसी गुफामें बैठकर ध्यान करते थे और कभी वसतिकामें बैठकर ध्यान करते थे। इसप्रकार ध्यान करते हुए और भव्यजीवोंको श्रेष्ठ उपदेश देते हुए वे वहां रहने लगे।

कदाचिद्ध्यानमारूढं ज्ञात्वा नागेन केनचित्।
आगत्य प्रभुदेहस्य सर्वांगस्पर्शनं कृतम् ॥३३॥
स्वजन्म सफलं मत्वा स्पृष्ट्वा तं च पुनःपुनः।
नत्वा स्मृत्वा निजस्थानं गतः सर्पः प्रसन्नधीः ॥३४

अर्थ— किसी एक समय वे क्षुल्लक ध्यानमें बैठे हुए थे उनको ध्यानमें बैठे देखकर किसी सर्पने आकर उन क्षुल्लकके सब शरीरका स्पर्श किया । इसप्रकार अपने जन्मको सफल मानता हुआ और वार वार उनके शरीरको स्पर्श करता हुआ, उनको नमस्कार करता हुआ और स्मरण करता हुआ, प्रसन्न चित्तको धारण करनेवाला वह सर्प अपने स्थानको चला गया ।

मेरुतुल्यं गुरोश्चित्तं न चचाल मनागपि ।
ईदृशं निश्चलं ध्यानं कलौ ज्ञेयं सुदुर्लभम् ॥३५॥

अर्थ— परंतु गुरुराजका हृदय मेरुपर्वतके समान निश्चल था इसलिये वह रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुआ । ऐसा निश्चल ध्यान इस कलियुगमें अत्यंत दुर्लभ समझना चाहिये ।

मार्गे संबोधयन् भव्यान् श्रीबाहुबलिनस्ततः ।
वन्दनार्थं गतः कृत्वा वन्दनां क्षुल्लकः सुधीः ॥३६
कुर्वन् जपं तपोध्यानं स्थितवान् कतिचिद्दिनम् ।
रम्ये भव्यजनानंददायके गिरिमस्तके ॥३७॥

अर्थ— तदनंतर मार्गमें अनेक भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए वे क्षुल्लक बाहुबलिकी वंदनाके लिये गये । तथा वंदना करके भव्यजीवोंको आनंद देनेवाले ऐसे उस मनोहर पर्वतके मस्तकपर जप, तप और ध्यान करते हुए कुछ दिनतक वहां ठहरे ।

ततोपि गतवान् धीरो नेजग्रामं शनैः शनैः।
वर्षायोगो धृतस्तत्र क्षुल्लकेन महात्मना ॥३८॥

अर्थ— धीरवीर वे महात्मा क्षुल्लक धीरे धीरे विहार करते हुए, नेजग्राममें पहुंचे और उन्होंने वहींपर चातुर्मास योग धारण किया।

स्वात्मानं चिंतयत् कुर्वन् स्वात्मकार्यं तपो जपम्।
ततःसंबोधयन् भव्यान् गतवान् नसलापुरम्॥३९

अर्थ— अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपका चितवन करते हुए, जपतप तथा अपने आत्माके उद्धारका शुभकार्य करते हुए और अनेक भव्यजीवोंको मोक्षमार्गमें लगाते हुए वे क्षुल्लक नसलापुरमें पहुंचे।

रम्यैर्जिनालयैर्भव्यश्रावकैश्च सुशोभितम्।
धार्मिकं नगरं बुध्वा वर्षायोगो धृतस्तदा ॥४०॥

अर्थ— मनोहर जिनालयोंसे तथा भव्य श्रावकोंसे सुशोभित उस धार्मिक नगरको देखकर वहांपर भी वर्षायोग धारण किया।

मिथ्यात्वं ध्वंसयन् धीरः सम्यक्त्वं स्थापयन् विभुः।
तपश्च विविधं कुर्वन् चातुर्मासं व्यतीतवान्॥४१॥

अर्थ— सबके स्वामी और धीरवीर उन क्षुल्लकने कितने लोगोंके मिथ्यात्वको नष्ट किया और सम्यग्दर्शनको स्थापन किया तथा अनेक प्रकारका तपश्चरण करते हुए उन्होंने वह

चातुर्मास भी पूर्ण किया ।

बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं यरनालपुरं गतः ।
मार्गे संबोधयन् भव्यान् कुर्वन् सन्मंगलं भुवि ॥४२

अर्थ— तदनंतर मार्गमें अनेक भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देते हुए और संसारमें आनंद मंगल बढाते हुए वे क्षुल्लक अनेक श्रावकोंके साथ यरनालपुर पहुंचे ।

चतुर्विंशतिशते षट् चत्वारिंशत्तमे शुभे ।
शिवंगते जिने वीरे शुभाष्टाह्निक पर्वणि ॥४३॥
फाल्गुन शुक्लपक्षे च चतुर्दश्यां महातिथौ ।
श्रीदेवेन्द्रगुरोः पार्श्वे दीक्षा जैनेश्वरी शुभा ॥४४॥
देवधर्मगुरुश्राद्धसाक्षिकं शुद्धचेतसा ।
गृहीता शुभसायाह्ने शांतिसागरयोगिना ॥४५॥
श्रावकाः सकलास्तत्र हर्षिता वृषवर्द्धनात् ।
गीतवादित्रशब्दैश्च जयशब्दैः कृतोत्सवाः ॥४६॥

अर्थ— वीरनिर्वाण संवत् चौवीससौ चालीसके शुभ अष्टान्हिकाके पर्वमें फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीकी महातिथिके दिन सांयकालके शुभमुहूर्तमें योगिराज उन शांतिसागर महाराजने अपने शुद्ध हृदयसे देव, धर्म, गुरु और श्रावकोंकी साक्षीपूर्वक अपने गुरु श्रीदेवेन्द्रकीर्तिके समीप जैनेश्वरी शुभ दीक्षा धारण की । उससमय समस्त श्रावक लोग गीत और

बाजोंके शब्दोंसे तथा जयजयकारके मधुर शब्दोंसे उत्सव मना रहे थे और धर्मकी वृद्धि होनेसे बहुत ही हर्ष मना रहे थे।

विशालसरसा नद्या पर्वतेन मनोहरम्।
फलपुष्पचयैर्वृक्षैः शोभितं च जिनालयैः ॥४७॥
एनापुरं ततो धीरो गतः संबोधयन् जनान्।
बहुभिः श्रावकैः साकं प्राविशन्नगरं शनैः ॥४८॥
जिनगौडादिभव्यानां श्रीमुनिः शान्तिसागरः।
बालगौडादिभक्तानामनुरोधात्क्षमानिधिः ॥४९॥
संबोधयन् जनान् तत्र वर्षायोगे स्थितः सुधीः।
कुर्वन् जपं तपो ध्यानं चातुर्मासं व्यतीतवान् ॥५०

अर्थ— तदनंतर वे मुनिराज श्रीशांतिसागर स्वामी एनापुर गांवमें पहुंचे। वह एनापुर गांव विशाल सरोवरसे, नदीसे और पर्वतसे मनोहर है, तथा फल पुष्पोंसे सुशोभित अनेक वृक्षोंसे और जिनालयोंसे विभूषित है ऐसे उस गांवमें धीरवीर, बुद्धिमान्, क्षमाके खजाने ऐसे मुनिराज शांतिसागरने अनेक श्रावकोंके साथ प्रवेश किया। वहांपर जिनगौडा और बालगौडा आदि जिनभक्त भव्यजन रहते हैं, उनके अनुरोधसे उन मुनिराजने वहांपर चातुर्मास योग धारण किया तथा अनेक भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए और जप-तप-ध्यान करते हुए चातुर्मास व्यतीत किया।

शनैःशनैश्च सर्वत्र विहरन् तत्र देशके ।
कोण्णूरनगरं प्राप्तो भव्यलोकसुखप्रदम् ॥५१॥
तत्रत्यानां जनानां सोनुरोधाद्धि विशेषतः ।
धर्मबुध्द्या च कृतवान् वर्षायोगं महामनाः ॥५२
मुनियोग्या गुहास्तत्र पर्वते सन्त्यनेकशः ।
तास्वेकदा च ध्यानस्थः संतिष्टते सुधर्मधृत् ॥५३
नागराजः समागत्य बुध्वा तं ग्रावखण्डकम् ।
चढित्वा च गुरोर्देहे क्रीडां चक्रे विशेषतः ॥५४
मुनिस्तु ध्यानसंलीनो निश्चलो ग्रावखण्डवत् ।
जीविते मरणे तुल्यः सुध्यानान्न चचाल सः ॥५५
ततः स नागराजोपि स्पृष्ट्वा तच्चरणं प्रभोः ।
पवित्रयित्वा स्वात्मानं निजस्थाने गतस्तदा ॥५६

अर्थ— तदनंतर उन मुनिराजने धीरे धीरे उस देशमें सब जगह विहार किया और फिर भव्यजीवोंको सुख देनेवाले कोण्णूर नगरमें जा पहुंचे । महा उदार हृदयको धारण करनेवाले मुनिराज शांतिसागरने वहांके लोगोंके विशेष अनुरोधसे तथा धर्मबुद्धिसे वहींपर वर्षायोग धारण किया । वहांपर पर्वतमें खुदी हुई मुनियोंके निवास करने योग्य अनेक गुफाएं हैं, उनमें से किसी एकमें किसी एक दिन धर्मको धारण करनेवाले वे

मुनिराज ध्यान करनेके लिये बैठ गये। इतनेमें वहांपर एक बहुत बडा सर्प आया। उसने उन मुनिराजके शरीरको पत्थरका खंड समझा और इसीलिये उनके शरीरपर चढकर उसने वहांपर विशेष रीतिसे क्रीडा की। उससमय वे मुनिराज शांतिसागर ध्यानमें लीन थे, पाषाण खंडके समान निश्चल थे और जीवन मरणमें समानता धारण करते थे। इसीलिये वे अपने शुभ ध्यानसे रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए। फिर वह सर्प उन मुनिराजके चरणोंको स्पर्शकर और अपने आत्माको पवित्र कर अपने स्थानपर चला गया।

इत्येवं विविधं ध्यानं कुर्वन्निच्छानिरोधकम्।
स्वात्मानं चिन्तयन् धीरः चातुर्मासं व्यतीतवान्।

अर्थ— इसप्रकार इच्छानिरोधरूपी अनेक प्रकारके ध्यानको करते हुए और अपने शुद्ध आत्माका चिंतवन करते हुए उन धीरवीर मुनिराजने चातुर्मास पूर्ण किया।

मार्गे संबोधयन् भव्यान् समडोलिपुरं गतः।
चातुर्मासं च कृतवान् जनान् ज्ञात्वा सुधार्मिकान्॥

अर्थ— मार्गमें अनेक भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए वे मुनिराज समडोली नामके गांवमें पहुंचे और वहांके लोगोंको धार्मिक समझकर वहींपर चातुर्मास योग धारण किया।

निषिद्धैर्गुरुणा दत्तमाचार्यपदमुत्तमम्।
पंडितैर्मुनिभिःश्राद्धैः संघैर्मत्वा सुयोग्यकम्॥५९

अर्थ— वहांपर गुरुराजके निषेध करनेपर भी पंडितोंने मुनियोने, श्रावकोने तथा सब संघने अत्यंत सुयोग्य समझकर उन मुनिराज शांतिसागरको उत्तम आचार्य पद दिया ।

ध्यानं तपो जपं कुर्वन् स्थितवान् कतिचिद्दिनम् ।
धर्मे च स्थापयन् भव्यान् चातुर्मासं व्यतीतवान् ॥

अर्थ— इसप्रकार जप-तप और ध्यान करते हुए वे मुनिराज कुछ दिनतक वहां ठहरे और अनेक भव्यजीवोंको धर्ममें स्थापन करते हुए उन्होंने चातुर्मास व्यतीत किया ।

चन्दप्पाथ सुअण्णप्पा चामण्णादि सुश्रावकाः ।
गोमट्टदेवयात्रार्थं कृतवन्तः सुप्रार्थनाम् ॥६१॥
तत्प्रार्थनां च स्वीकृत्य चचाल शांतिसागरः ।
स्थलेऽरण्ये गिरौ ग्रामे कुर्वन् ध्यानं सुपुण्यदम्॥६२
बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं कुर्वन् मंगलमुत्तमम् ।
जिनेंद्रभक्तभव्यानां चित्तमल्हादयन् विभुः ॥६३॥
पुरं ग्रामं वनं देशमुलंघ्य सर्वपुण्यदः ।
शनैः मैसूरराज्यस्यान्तर्गतं गतवान् सुधीः ॥६४

अर्थ— तदनंतर चंदप्पा, अण्णप्पा, चामण्णा आदि श्रेष्ठ श्रावकोंने श्रीगोमट्टदेवकी यात्रा करनेके लिये आचार्य श्रीशान्तिसागरसे प्रार्थना की। अत्यंत बुद्धिमान् और सब जीवोंको पुण्यप्रदान करनेवाले आचार्य शांतिसागर उनकी

इस प्रार्थनाको स्वीकार कर यात्राके लिये चले। वे आचार्य स्थल, वन, पर्वत और ग्रामोंमें उत्तम पुण्य उत्पन्न करनेवाला ध्यान करते थे, अनेक श्रावकोंके साथ उत्तम मंगल करते जाते थे और भगवान् जिनेन्द्रदेवके भक्त भव्यजीवोंके चित्तको प्रसन्न करते जाते थे। इसप्रकार अनेक नगर, गांव, वन और देशको उल्लंघन कर धीरे धीरे वे आचार्य मैसूर राज्यके भीतर पहुंचे।

श्रीश्रवणबेलगुले वंदित्वा गोमटप्रभुम्।
भव्यान्संबोधयंस्तत्र दिनानि कतिचित्स्थितः॥

अर्थ— उन आचार्यने श्रीश्रवणबेलगुलमें जाकर भगवान् गोमट्टदेवकी वंदना की और फिर भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए कुछ दिनतक वहां ठहरे।

भेरीनिभे गिरौ रम्ये गोम्मटेशो विराजते।
द्विपंचाशत्करोत्तुंगः शांतः परमसुंदरः॥६६॥
तत्सन्मुखे गिरौ भान्ति भवनानि जिनेशिनाम्।
सुदीर्घप्रतिमाभिश्च राजितानि जितैनसाम्॥६७॥
भद्रबाहुमुनेः पादौ गुहायां स्तः सुपुण्यदौ।
वंदित्वा सकलान् देवः प्राप्तपुण्यस्तदाभवत्॥६८

अर्थ— वहांपर नगाडेके आकारके मनोहर पर्वतपर गोमट्टस्वामी विराजमान हैं, वे बावन हाथ ऊंचे हैं, अत्यंत शांत हैं और परम सुंदर हैं। उनके सामने ही एक पर्वत और

है उसपर भी पापोंके नाश करनेवाले भगवान् जिनेंद्रदेवके अनेक भवन बने हुए हैं, उनमें बडी बडी प्रतिमाएं विराजमान हैं। उसी पर्वतपर एक गुफामें मुनिराज भद्रबाहुके पुण्य उत्पन्न करनेवाले चरण विराजमान हैं। आचार्य शांतिसागरने उन सबकी वंदना कर महा पुण्य उपार्जन किया।

ततोऽचलन्मूडबिद्रीयात्रार्थं करुणालयः ।
ईर्यासमितिसंशुध्द्या रक्षन् जीवान् बहूंस्तदा ॥६९॥

अर्थ— तदनंतर अत्यंत दयालु वे आचार्य ईर्यापथ समितिकी परम शुद्धिसे अनेक जीवोंकी रक्षा करते हुए मूडबिद्रीकी यात्राको चले।

विशालैः सुन्दरै रम्यैः शृंगध्वजविराजितैः ।
सद्रत्नप्रतिमापूतैः सिद्धांतग्रंथशोभितैः ॥७०॥
जिनालयैरनेकैश्च भूषितं जनरंजकम् ।
शनैः शनैश्च संप्राप्तो मूडबिद्र्याख्यपत्तनम् ॥७१॥

अर्थ— वे मुनिराज धीरे धीरे चलकर मूडबिद्रीनगरमें पहुंचे। वह मूडबिद्रीनगर लोगोंको प्रसन्न करनेवाला है और अनेक जिनभवनोंसे सुशोभित है। वे जिनभवन भी बहुत विशाल हैं, अत्यंत सुन्दर हैं, अत्यंत मनोहर हैं, शिखर और ध्वजाओंसे सुशोभित हैं, उत्तमोत्तम रत्नोंकी प्रतिमाओंसे पवित्र हैं और सिद्धांत ग्रंथोंसे सुशोभित हैं।

सर्वान् जिनालयान् नत्वा नत्वा सत्प्रतिमाः शुभाः।
सिद्धांतप्राभृतं श्रुत्वा नत्वा स्तुत्वा प्रपूज्य च ॥७२
धर्मोपदेशं कुर्वन् स स्वाध्यायं च जपं तपः।
भव्यानाल्हादयन् सूरिर्दिनानि कतिचित्स्थितः ॥

अर्थ— उन आचार्यने उन समस्त जिनालयोंको नमस्कार किया, समस्त शुभ सत्प्रतिमाओंको नमस्कार किया, सिद्धांत ग्रन्थोंको सुना, उनको नमस्कार किया, उनकी स्तुति की, पूजा की तथा धर्मोपदेश स्वाध्याय जप-तप करते हुए और भव्यजीवोंको प्रसन्न करते हुए वे आचार्य कुछ दिनतक वहां रहे।

ततोऽचलत्सूरिराजः बेलग्रामं प्रसन्नधीः।
मुनिभिः श्रावकैः सार्द्धं समितीः परिपालयन् ॥

अर्थ— तदनंतर निर्मल बुद्धीको धारण करनेवाले वे आचार्य अनेक मुनि और श्रावकोंके साथ समितियोंका पालन करते हुए बेलगांवके लिये चले।

भवे न वर्तते सौख्यं दर्शयन्निति सज्जनान्।
त्यजन्तु कोपं मानं च मायां लोभं मदं स्मरम् ॥
आत्मनः शत्रव श्चैते स्वशान्त्योपदिशन्निति।
मठं स्वाध्यायशालां च स्थापयन् धर्महेतवे ॥७६॥

कारयन्मंगलं मार्गे प्राप्तवान् बेलगांवकम् ।
तत्रोत्सवः कृतः सर्वैर्गायद्भिर्मधुरं जनैः ॥७७॥
तपश्च विविधं कुर्वन् स्वात्मानं चिंतयन् तथा ।
धर्मप्रभावनां ध्यानं दिनानि कतिचित्स्थितः ॥७८

अर्थ— संसारमें सुख नहीं है इस बातको वे आचार्य अपने शुद्ध आत्मासे ही दिखलाते थे, तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, मद और कामको छोडो; ये आत्माके शत्रु हैं इस बातका उपदेश वे केवल अपनी शांतिसे ही देते थे। धर्मके लिये उन्होंने मार्गमें कितने ही मठ स्थापन कराये, कितनी ही स्वाध्यायशालाएं स्थापन कराई और कितने ही स्थानोंमें आनंद मंगल कराये। इसप्रकार चलते चलते वे बेलगांव पहुंचे। इससमय वहांके सब लोगोंने मधुर गीत गाते हुए, बहुत ही अच्छा उत्सव किया था। वे आचार्य अनेक प्रकारका तपश्चरण करते हुए, अपने आत्माका चिंतवन करते हुए, धर्मकी प्रभावना करते हुए और ध्यान करते हुए कुछ दिनतक वहां ठहरे।

धर्मसुद्योतयन्मार्गे कुंभोजनगरं प्रति ।
अचलद्बोधयन् भव्यान् शांतितोयं हि पाययन् ॥
जयशब्दं प्रकुर्वद्भिर्मधुरं मंगलध्वनिम् ।
राजलोकैः प्रजावर्गैः श्रीपाटीलजनैर्वरैः ॥८०॥
मुनिभिः श्रावकैर्भव्यैर्नगरं प्राविशत्समम् ।

दादागौडादिमुख्यानां विनयाच्छान्तिसागरः ॥
वर्षायोगं च धृतवान् ससंघेन मुदा तदा ।
तपश्च विविधं कुर्वन् वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥८२

अर्थ— तदनंतर मार्गमें धर्मका उद्योत करते हुए भव्य जीवोंको उपदेश देते हुए और शांतिरूपी जलको पिलाते हुए, वे आचार्य कुंभोज नगरको चले। वहां पहुंचकर जय जय शब्द करते हुए और मधुर मंगल ध्वनि करते हुए, राजलोक और प्रजाके लोगोंके साथ, पाटील आदि उत्तम पुरुपोंके साथ तथा भव्य श्रावक और मुनियोंके साथ आचार्य शांतिसागरने नगरमें प्रवेश किया। दादागौडा आदि मुख्य मुख्य लोगोंकी प्रार्थनाको स्वीकार कर आचार्य महाराजने संघके साथ बडे आनंदसे वर्षायोग धारण किया तथा अनेक प्रकारके तपश्चरण करते हुए वर्षायोग समाप्त किया।

ततो चलत्शुभे मार्गे वोधयन् भव्यश्रावकान् ।
नांदणीनगरं प्राप्तः मुनिभिः श्रावकैः समम् ॥८३
देवेन्द्रदेवगौडादि भक्तानां हि विशेषतः ।
नेर्दे श्रावकमुख्यानां विनयात्कृतवान् मुदा ॥८४
वर्षायोगं तत्र धीमानाचार्यः शांतिसागरः ।
ध्यानं जपं तपः कुर्वन् स्थितवान् पालयन् व्रतम् ॥

धर्मेच स्थापयन् भव्यान् तत्संस्कारं च कारयन् ।
स्वात्मबोधं सदा कुर्वन् चातुर्मासं व्यतीतवान् ॥

अर्थ— तदनंतर वहांसे भी वे चले। मार्गमें अनेक भव्य श्रावकोंको उपदेश देते जाते थे, चलते चलते वे अनेक मुनि और श्रावकोंके साथ नांदणी गांवमें पहुंचे। वहांपर देवेन्द्र देवगौडा, नेर्दे आदि मुख्य मुख्य श्रावकोंने विशेष प्रार्थना की इसीलिये अत्यंत बुद्धिमान् आचार्य शांतिसागरने वहींपर वर्षा-योग धारण किया। जप, तप, ध्यान करते हुए तथा व्रतोंको पालन करते हुए वे आचार्य संघसहित वहीं रहने लगे। वहांपर उन्होंने अनेक भव्यजीवोंको धर्ममें स्थापन किया, अनेक भव्य-जीवोंको संस्कार करानेका उपदेश दिया और स्वयं आत्मज्ञान प्राप्त किया। इसप्रकार उन्होंने वह चातुर्मास पूर्ण किया।

वंशस्थलगिरेः स्वामी यात्रार्थं श्रावकैर्वरैः ।
चचाल मुनिभिः सार्कं स्वधर्मे स्थापयन् जनान् ॥

अर्थ— तदनंतर वे शांतिसागर स्वामी मार्गमें अनेक भव्यजीवोंको जिनधर्ममें स्थापन करते हुए, अनेक धर्मात्मा श्रावकोंके साथ तथा अनेक मुनियोंके साथ श्री कुंथलगिरिकी यात्राके लिये चले।

वने स्थले गिरौ कुर्वन् धर्मध्यानं च मंगलम् ।
मिथ्यात्वं ध्वंसयन् धीरः सम्यक्त्वं स्थापयन् तथा ॥
नद्यद्रिपुरमुलंघ्य प्राप्तस्तत्र दयानिधिः ।

कुलभूषणमानम्य नत्वा श्रीदेशभूषणम् ॥८९॥
बभूव कृतकृत्यश्च पूतः संघचतुर्विधः।
स्वात्मानं चिंतयन् कुर्वन् भवहारि तपो जपम्॥
स्वरसं पाययन् धीरः पिवन्नात्मामृतं रसम्।
पुनस्ततो चलत्स्वामी संबोध्याखिलश्रावकान्॥

अर्थ— वे आचार्य शांतिसागरस्वामी वनमें, स्थलमें और पर्वतोंपर धर्मध्यान करते थे, आनंद मंगल करते जाते थे, मिथ्यात्वको नाश करते जाते थे और सम्यग्दर्शनको स्थापन करते जाते थे। इसप्रकार दयानिधि धीरवीर वे आचार्य नदी, पर्वत और नगरोंको उल्लंघन करते हुए कुंथुलगिरी पर्वतपर पहुंचे। वहांपर उन्होंने चारों प्रकारके संघके साथ भगवान् कुलभूषणको नमस्कार किया और भगवान् देशभूषणको नमस्कार किया। इसप्रकार वह चारों प्रकारका संघ पवित्र हुआ और कृत कृत्य हुआ। फिर वे स्वामी समस्त श्रावकोंको उपदेश देकर अपने शुद्ध आत्माका चिंतवन करते हुए, जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेवाले जप और तपश्चरण करते हुए, अपने आत्मासे उत्पन्न हुए, आत्मामृत रसको स्वयं पान करते हुए तथा अन्य भव्य जीवोंको पिलाते हुए वहांसे आगे चले।

सखारामात्मजश्रेष्ठिरावजीप्रार्थनावशात्।
विहरन् मार्गदेशेषु प्राप्तः शोलापुरं सुधीः॥९२॥

अर्थ— वे बुद्धिमान् आचार्य मार्गके देशोंमें विहार करते हुए सेठ रावजी सखाराम की प्रार्थना स्वीकार कर शोलापुर पहुंचे ।

तत्रोत्सवः कृतो लोकैः भव्यमंडपमध्यगः ।
श्रुत्वा सूर्युपदेशं च प्रसन्नाः सर्वश्रावकाः ॥९३॥

अर्थ— वहांपर वहांके लोगोंने एक भव्य मंडप बनाया और उसमें बडा भारी उत्सव किया । तथा आचार्य महाराजके उपदेशको सुनकर वहांके सब श्रावक प्रसन्न हुए ।

स्थापयन् जिनधर्मे च जीवान् हितमितप्रियम् ।
कृपानिधिर्वदन्नित्यं दिनानि कतिचित्स्थितः ॥९४

अर्थ— वहांपर कृपानिधि वे आचार्य अनेक जीवोंको जिनधर्ममें स्थापन करते हुए तथा सदा हित मित और प्रिय वचन बोलते हुए कुछ दिन वहां रहे ।

ततोपि विहरन्स्वामी मार्गे संबोधयन् जनान् ।
लघुबाहुबलिं प्राप्तः पर्वतं मुनिभिःसमम् ॥९५॥
कलापाशास्त्रिणा तत्र निर्मिताः सुन्दरा गुहाः ।
तद्भक्तिवशतः सूरिः धर्मप्रीत्या स्थितस्तदा ॥९६
रम्यं जिनालयं बुध्वा स्थानं धर्मस्य साधकम् ।
वर्षायोगो धृतस्तेन कुर्वता ध्यानमुत्तमम् ॥९७॥

नाशयित्वा महामोहं कृत्वा पुण्य संचयम् ।
व्यतीतः पुण्यदस्तत्र वर्षायोगो महात्मना ॥९८॥

अर्थ— तदनंतर उन मुनिराजने अनेक मुनियोंके साथ वहांसे विहार किया। मार्गमें भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए वे छोटे बाहुबलि पर्वतपर पहुंचे। वहांपर कल्लप्पा शास्त्रीने बहुत सुंदर गुफाएं बनवाई हैं, उसी कल्लप्पा शास्त्रीकी भक्तिके वश होकर तथा धर्मप्रेम धारण कर वे आचार्य वहां ठहरे। वहांपर उन्होंने मनोहर जिनालयको देखकर तथा स्थानको धर्मका साधक समझकर वर्षायोग धारण किया। उन महात्माने वहांपर उत्तम ध्यान किया, महामोहका नाश किया और महापुण्यका संचय किया। इसप्रकार पुण्य उत्पन्न करनेवाला वह वर्षायोग समाप्त किया।

जीवास्तदुपदेशेन बभूवुः भुवि धार्मिकाः ।
संजाता व्रतिनः केचित्केचिद्धर्मप्रभावकाः ॥९९॥
वर्णिनः क्षुल्लकाः केचित्केचिद्दर्शनशुद्धकाः ।
दयालुः गुरुभक्तश्च नीतिज्ञो वीरसागरः ॥१००॥
क्षमानिधिस्तपस्वी च योगी श्रीनेमिसागरः ।
दृढव्रती द्वितीयोपि शान्तिदो नेमिसागरः ॥१॥
एते त्रयोऽनगाराश्च संजाता धर्मवर्द्धकाः ।
एवं दक्षिणे महती जाता धर्मप्रभावना ॥२॥

अर्थ— आचार्य शांतिसागरके उपदेशसे इस संसारमें कितने ही लोग धार्मिक होगये, कितने ही व्रती होगये, कितने ही धर्मकी प्रभावना करनेवाले होगये, कितने ही ब्रह्मचारी होगये, कितने ही क्षुल्लक होगये और कितने ही शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले होगये। इनके सिवाय तीन मुनि हुए। उनमेंसे दयालु गुरुभक्त और नीतिको जाननेवाले वीरसागर हैं, क्षमाके निधि योगी और तपस्वी श्री नेमिसागर हैं और शांति देनेवाले दृढव्रती दूसरे नेमिसागर हैं। ये तीनों ही मुनिधर्मको वढानेवाले हैं। इसप्रकार आचार्य शांतिसागरके निमित्तसे दक्षिण देशमें धर्मकी महाप्रभावना हुई है।

इति दक्षिणदिक् सन्धिः ।

अथद्वितीयसंधिः ।

पूनमचन्द्रस्य पुत्रो घासीलालो महामनाः ।
दाडिमचन्द्रस्तत्पुत्रो गेंदमल्लो द्वितीयकः ॥३॥
तृतीयो मोतीलालश्च तत्पत्न्यश्च सपुत्रकाः ।
शान्तिसागरसूरेश्च वंदनार्थं समागताः ॥४॥
वंदित्वा शुभभावेन परमोत्साहनिर्भरः ।
प्रार्थयामास सः श्रेष्ठिः यात्रार्थं शांतिसागरम् ॥५॥
सम्मेदशैलयात्रार्थं गन्तुकामः ससंघकः ।
भवन्तोऽपि दयां कृत्वा गच्छन्तु मयका सह ॥६॥

तत्प्रार्थनावशात्सूरीर्मत्वा धर्मप्रभावनाम् ।
अचलत्तेनसार्द्धं हि कायोत्सर्गं विधाय वै ॥७॥

अर्थ— वहींपर सेठ पूनमचन्द्रके पुत्र घासीलाल तथा दाडिमचंद, गेंदमल, मोतीलाल आदि उनके पुत्रपौत्र और घरकी सब स्त्रियां आचार्य शांतिसागरकी वंदना करनेके लिये आये। सेठ घासीलालने शुभ भावोंसे तथा बडे भारी उत्साहपूर्वक आचार्य शांतिसागर महाराजकी वंदना की और यात्राके लिये नीचे लिखे अनुसार प्रार्थना की। वे सेठ प्रार्थना करने लगे कि हे स्वामिन्, मैं संघसहित श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा करना चाहता है कृपाकर आप भी मेरेसाथ पधारें। सेठकी इस प्रार्थनाको सुनकर और उनके साथ चलनेमें धर्मकी प्रभावना समझकर वे आचार्य कायोत्सर्ग कर उनके संघके साथ वहांसे चले।

शास्त्री नन्दनलालोपि वन्दनार्थं समागतः ।
वंदित्वा सह संघेनाचलच्च गुरुभक्तये ॥८॥

अर्थ— वहींपर नन्दनलाल शास्त्री भी वंदनाके लिये आये थे। उन्होंने आचार्यमहाराजकी वदना की और उस संघके साथ गुरुभक्ति करनेके लिये वे भी चले।

जनान् प्रबोधयन् मार्गे प्राप्तः सांगलिपत्तनम् ।
राजलोकैः प्रजावर्गैः श्रेष्ठिभिः श्रावकैस्तथा ॥९॥

सुस्वागतं कृतं सर्वैं संघस्य च जगद्गुरोः ।
प्रतिघस्रं गुरुर्भव्यान् पाययन् वचनामृतम् ॥१०॥
संघेनसह संघश्रीः दिनानि कतिचित्स्थितः ।
पुण्यशाली नरेंद्रोपि राजलोकैः समं तदा ॥११॥
श्रुत्वा जगद्गुरोः कीर्तिं वंदनार्थं समागतः ।
नत्वा मस्तकमानम्य श्रुत्वा सद्गुरुदेशनाम् ॥१२॥
गृहीत्वा धर्मलाभं स धर्ममूर्तिः गृहं गतः ।
धर्ममुद्योतयन्नेवमचलत्पुरतो गुरुः ॥१३॥

अर्थ— मार्गमें लोगोंको उपदेश देते हुए वे आचार्य संघसहित सांगलीनगरमें पहुंचे । वहांपर राज्यकार्यके अधिकारियोंने, प्रजाके लोगोने, सेठ लोगोंने और श्रावकोंने सबने मिलकर जगत्गुरु आचार्यका और संघका बडी धूमधामके साथ स्वागत किया । संघके नायक आचार्य शांतिसागर प्रति दिन भव्यजीवोंको वचनामृत पिलाते हुए संघके साथ कुछ दिन वहां ठहरे । वहांके राजा भी पुण्यवान थे उन्होंने भी आचार्य महाराजकी कीर्ति सुनी और फिर वे अपने राजलोगोंके साथ आचार्य महाराजकी वदना करनेके लिये आये उन्होंने मस्तक झुकाकर आचार्यको नमस्कार किया, आचार्यमहाराजका उपदेश सुना और इसप्रकार धर्मका लाभ लेकर धर्ममूर्ति वे नरेश घरको चले गये । तथा आचार्य महाराज इसप्रकार धर्मका उद्योत करते हुए आगे चले ।

क्रमात् मिरजराज्ये संयातः संबोधयन् जनान् ।
तत्रापि श्रावकैर्मुख्यै राजलोकैर्वणिग्वरैः ॥१४॥
स्वागतं शान्तिसिंधोश्च कृतं योग्यं यथागुरोः ।
वन्दनार्थं नरेन्द्रोप्यागतः कृत्वा च वन्दनाम् ॥१५
धर्मामृतं गुरोः पीत्वा पार्श्वे स्थित्वा स्वयं नृपः ।
श्रुत्वा सदुपदेशं च निर्विकारगुरोर्मुखात् ॥१६॥
हर्षाद्याचितवान् भूपश्चाशीर्वादं गुरोस्तदा ।
गुरुः प्रवचनसारं स्वाध्यायार्थं ददौ मुदा ॥१७॥

अर्थ— तदनंतर वे आचार्य मार्गमें लोगोंको उपदेश देते हुए, अनुक्रमसे चलकर मिरज राज्यमें पहुंचे । वहांपर भी मुख्य मुख्य श्रावकोंने राज्यकार्यके अधिकारियोंने और सब व्यापारियोंने आचार्य शांतिसागरका वैसा ही स्वागत किया जैसा कि गुरुका किया जाता है। आचार्य महाराजकी वंदना करनेके लिये मिरजके महाराज भी पधारे। उन्होंने आचार्य महाराजकी वंदना की और समीप बैठकर गुरुके मुखसे धर्मामृतका पान किया। निर्विकार गुरुके मुखसे श्रेष्ठ उपदेशको सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने गुरुमहाराजका आशीर्वाद मांगा। गुरु महाराजने भी स्वाध्याय करनेके लिये प्रवचनसार नामका ग्रंथ उन महाराजको दिया।

धर्मं प्रवर्द्धयन् सूरिस्ततो गत्वा क्रमाच्छनैः ।
आलंदनगरं प्राप्तः निजामनृपशासितं ॥१८॥

अर्थ— वे आचार्य धर्मकी वृद्धि करते हुए धीरे धीरे अनुक्रमसे चलकर निजाम राजाके द्वारा पालित आलंदनगरमें पहुचे ।

धर्मध्यानं सदा कुर्वन् मंगलं कारयन् वरम् ।
जयशब्दं प्रकुर्वद्भिः श्रावकैर्मंगलध्वनिम् ॥१९॥
राजलोकैर्वणिग्वर्यैः प्राविशन्नगरं मुदा ।
भव्यान् संबोध्य संस्थाप्य स्वधर्मे च ततोऽचलत् ॥

अर्थ— मार्गमें वे आचार्य सदा धर्मध्यान भी करते जाते थे और मंगल भी कराते जाते थे। वहां पहुंचनेपर मंगल ध्वनि और जयजय शब्द करते हुए श्रावकोने तथा राजलोक और व्यापारियोंने बडे आनंदके साथ नगरमें प्रवेश कराया। तदनंतर वहांपर भव्यजीवोंको उपदेश देकर और उनको अपने धर्ममें स्थापनकर वहांसे आगे चले ।

मार्गे विरोधमूलानि गुरुरुन्मूल्य मूलतः ।
प्रसारयन् दयाधर्मं शान्तिं सर्वत्र कारयन् ॥२१॥
सुधर्ममंगलं कुर्वन् प्राप्तो नागपुरं शनैः ।
अपूर्वं स्वागतं तत्र निखिलैः श्रावकैः कृतम् ॥२२

अर्थ— वे आचार्य मार्गके लोगोंमें होनेवाले वैरविरोधको जडमूलसे नष्ट करते जाते थे, दयाधर्मकी वृद्धि करते जाते थे, सर्वत्र शांतिका राज्य स्थापन करते जाते थे और श्रेष्ठ जिनधर्मका मंगल करते जाते थे। इसप्रकार धीरे धीरे चलकर

वे नागपुरनगरमें पहुंचे। वहांके समस्त श्रावकोंने मिलकर आचार्य महाराजका अपूर्व स्वागत किया।

पाययन् धर्मपीयूषं दिनानि कतिचिद्गुरुः।
स्थितस्तदुपदेशेन त्यक्तं शूद्रजलं जनैः ॥२३॥

अर्थ— वे आचार्य धर्मामृतका पान कराते हुए कुछ दिनतक वहां ठहरे। उनके उपदेशसे बहुतसे लोगोंने शूद्र जलका त्याग किया।

प्राच्यां दक्षिणतस्तेषां विहारः शान्तिदोऽभवत्।
मार्गे तदुपदेशेन बभूवुर्धार्मिका जनाः ॥२४॥
मोचयन् मदिरापानं जीवानां मांसभक्षणम्।
स्वात्मवत्प्राणिनो रक्षन् शान्तिदः शांतिसागरः॥
उल्लंघ्य ग्रामनद्यद्रीन्नगरं पुरपत्तनम्।
प्राप्तः सम्मेदशैलं स संघेन सह तारकः ॥२६॥

अर्थ— उन आचार्य शांतिसागरका दक्षिण दिशासे पूर्वदिशाकी ओर होनेवाला विहार अत्यंत शांति देनेवाला हुआ था। मार्गमें उनके उपदेशसे बहुतसे लोग धर्मात्मा होगये थे। सबको शांति देनेवाले वे आचार्य शांतिसागर मार्गमें अनेक जीवोंके मद्यपानका त्याग कराते जाते थे, मांसभक्षणका त्याग कराते जाते थे और आत्माके समान समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते जाते थे। इसप्रकार अनेक गांव, नदी, पर्वत, नगर, पुर पत्तनोंको उल्लंघन कर तरणतारण वे आचार्य संघके साथ

सम्मेदशिखर पर्वतपर पहुंचे ।

श्रेष्ठिना संघभक्तेन प्रतिष्ठा कारिता तदा ।
उत्सवैर्विविधैः सार्द्धं वाद्यैर्योग्यैर्मनोहरैः ॥२७॥
श्रेष्ठिनः पण्डिताः सर्वे त्यागिनो मुनयस्तदा ।
आगता दर्शनार्थं हि प्रायो लक्षाधिका नराः ॥२८
तैरमा वंदनां कृत्वा कृत्वा तान् मोक्षगामिनः ।
सर्वानस्थापयद्धर्मे दयालुः शांतिसागरः ॥२९॥
पूज्यक्षेत्रे जगद्वंद्ये दिनानि च कतिचित्स्थितः ।
ततः प्रयाणं कृतवान् सम्मेदशिखरात्प्रभुः ॥३०॥

अर्थ— उससमय संघभक्त शिरोमणि सेठ घासीलालजी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी। उससमय अनेक प्रकारके उत्सव किये गये थे, मनोहर और योग्य बाजे बजवाये थे। उससमय दर्शन करनेके लिये सब सेठ, सब पंडित, सब त्यागी और सब मुनि आये थे। लगभग सवा लाख मनुष्य इकट्ठे हुए थे। आचार्य शांतिसागरने उन सबके साथ सम्मेदशिखरकी वंदना की थी। उन सबको मोक्षगामी बनाया था, सबको उपदेश दिया था और सबको धर्ममें स्थापन किया था। इसप्रकार जगत्वंद्य उस पूज्य पर्वतके समीप वे कुछ दिनतक रहे थे। तदनंतर उन प्रभु शांतिसागरने उस पूज्य सम्मेदशिखरसे प्रयाण किया था।

स्वधर्मे स्थापयन् भव्यान् भवभीतिं विनाशयन् ।
जनानां नाशयन्क्लेशं पालयन् समितीः पराः ॥३१

काशी प्रयागदेशेच दिनानि कतिचित्स्थितः ।
संघेन सह तत्रस्थान् भव्यान् संबोध्य श्रावकान् ॥

ततो चलत्स्वसंघेन प्राप्तश्च कटनीपुरम् ।
लोके दिगम्बरत्वस्य महत्वं दर्शयन् विभुः ॥३३॥

अर्थ— मार्गमें भव्यजीवोंको अपने धर्ममें स्थापन करते जाते थे, लोगोंके संसारसंबंधी भयोंको दूर करते जाते थे, उनके दुःखोंको नष्ट करते जाते थे और श्रेष्ठ समितियोंका पालन करते जाते थे। इसप्रकार चलते हुए वे संघके साथ काशी और प्रयाग देशमें पंहुचे तथा वहां कुछ दिनतक रहे और वहांके भव्यश्रावकोंको धर्मोपदेश दिया। तदनतर अपने संघकेसाथ फिर वहांसे चले और संसारभरमें दिगम्बर व्रतका महत्व दिखलाते हुए, कटनी नगरमें पहुचे।

कन्हैयालालमुख्यानां जगन्मोहन शास्त्रिणाम् ।
तथा टोडरमल्लानां विशेषप्रार्थनावशात् ॥३४॥

ज्ञात्वा धर्मानुकूलं हि क्षेत्रं योग्यं तथा जनान् ।
वर्षायोगो धृतस्तत्र जिनधर्मप्रवर्द्धकः ॥३५॥

अर्थ— वहांपर कन्हैयालाल, टोडरमल्ल आदि मुख्य श्रावकोंकी प्रार्थनासे तथा जगन्मोहन शास्त्रीकी विशेष प्रार्थनासे

उस क्षेत्रको धर्मानुकूल समझकर और लोगोंको सुयोग्य समझकर आचार्यमहाराजने संघके साथ जिनधर्मको बढानेवाला वर्षायोग धारण किया ।

घासीलालो दयामूर्तिः संघभक्तशिरोमणिः ।
गेंदमल्लादिभिः पुत्रैः त्रिभिः परमधार्मिकैः ॥३६॥
धर्मपत्न्यादिभिः सार्द्धं कुटम्बसहितैस्तदा ।
विनयेन सुभक्त्यैव गुरुं नत्वा पुनःपुनः ॥३७॥
बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं गतवान् स्वपुरं प्रति ।
श्रीरावजी सखारामो धर्मवीरो दयानिधिः ॥३८॥
राजीमत्या स्वपत्न्या च दाक्षिणात्यसुधार्मिकैः ।
बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं गतवान् स्वपुरं प्रति ॥३९

अर्थ—संघभक्तशिरोमणि दयामूर्ति सेठ घासीलालजी, गेंदमल आदि अपने परम धार्मिक तीनों पुत्रोके साथ अपनी और पुत्रोंकी धर्मपत्नियोंके साथ तथा समस्त कुटंबके साथ तथा अनेक श्रावकोंके साथ यहां तक रहे थे। कटनी पहुंचकर उन्होने बडी विनय और बडी भक्तिके साथ वार वार आचार्य महाराजको नमस्कार किया और सबके साथ अपने स्थानको चले गये। दयानिधि धर्मवीर सेठ रावजी सखाराम अपनी धर्मपत्नी राजमतीके साथ तथा दक्षिणके अनेक भव्य श्रावकोंके साथ आये थे, वे भी अपने नगरको लौट गये ।

इति पूर्वदिक्संधिः ।

धर्मध्यानं धर्मचर्चां पंडितैः धार्मिकैः सह।
स्वाध्यायं प्रत्यहं कुर्वन् वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥४०॥

अर्थ— उन आचार्यने अनेक पंडित और धार्मिकोंके साथ धर्मचर्चा करते हुए, धर्मध्यान करते हुए और प्रतिदिन स्वाध्याय करते हुए, वर्षायोग व्यतीत किया।

ततो चलत्ससंघेन विहरन् शांतिसागरः।
धर्ममुद्योतयन् तत्र देशे बुंदेलखण्डके ॥४१॥
क्रमात् प्राप्तः ससंघश्च ललितं ललितंपुरम्।
मिलित्वा श्रावकैः श्रेष्ठैः कृतस्तत्रोत्सवो महान् ॥
धर्मयोग्यं शुभं क्षेत्रं श्रावकान् धर्मवत्सलान्।
दृष्ट्वा तेन सुसंघेन वर्षायोगो धृतस्तदा ॥४३॥

अर्थ— तदनंतर वे आचार्य शांतिसागर अपने संघके साथ वहांसे चले। उस बुंदेलखंड क्षेत्रमें विहार करते हुए और धर्मका उद्योत करते हुए, अनुक्रमसे चलकर संघके साथ सुंदर ललितपुर नगरमें पहुंचे। वहांपर सब श्रावकोंने मिलकर भारी उत्सव मनाया। आचार्य महाराजने देखा कि यह क्षेत्र शुभ है और धर्मसाधनके योग्य है तथा यहांके लोग धर्मप्रेमी हैं यही समझकर उन्होंने वहींपर वर्षायोग धारण किया।

सरस्तटे गिरौ रम्ये श्मशाने जिनमंदिरे।
ध्यानं जपं तपः कुर्वन् वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥४४

अर्थ— सरोवरके किनारे मनोहर पर्वतोंपर श्मशान भूमिमें और जिनमंदिरमें जप, तप और ध्यान करते हुए उन्होने वर्षायोग समाप्त किया ।

ततो चलत्पुरः स्वामी तोषयन् भव्यश्रावकान् ।
प्रसारयन् दयाधर्मं नामयन् नरनायकान् ॥४५॥
घनेरण्ये नदीतीरे व्याप्ते च पशुभिर्वने ।
अध्ययनं स्तवं ध्यानं कुर्वन् पाठं सुपुण्यदम् ॥४६
भूरिराज्यं पुरं ग्राममुल्लंघ्य शांतिसागरः ।
सिद्धक्षेत्रं सदापूतं प्राप्तः स्वर्णगिरिं विभुः ॥४७॥

अर्थ— तदनतर वे शांतिसागर स्वामी भव्यश्रावकोको संतुष्ट करते हुए, दयाधर्मको फैलाते हुए और अनेक राजाओंसे नमस्कार कराते हुए आगे चले। वे आचार्य घने वनमें नदीके किनारे और पशुओंसे भरे हुए वनमें अध्ययन करते जाते थे, अरहंतदेवकी स्तुति करते जाते थे, ध्यान करते जाते थे और पुण्य बढानेवाले पाठ करते जाते थे। इसप्रकार चलते हुए अनेक राज्योंको, नगरोंको और गांवोंको उल्लंघन कर वे पूज्य आचार्य सदा पवित्र ऐसे सोनागिर सिद्धक्षेत्रपर पहुंचे ।

वंदित्वा तच्छुभं क्षेत्रं निखिलांश्च जिनालयान् ।
चतुर्विंशतिशतेऽब्दे षट्पंचाशत्तमे शुभे ॥४८॥
मार्गशीर्षे शुभे मासे पौर्णिमायां शुभे दिने ।
मोक्षं गते जिने वीरे चत्वारो मुनयस्तदा ॥४९॥

प्रभाते दीक्षितास्तत्र शान्तिसागरयोगिना।
तेषां नामानि वर्ण्यन्ते दीक्षितानां यथाक्रमम्॥५०

अर्थ— आचार्य महाराजने उस शुभ क्षेत्रकी वंदना की और समस्त जिनालयोंकी वंदना की। फिर वीरनिर्वाण सम्वत् चौवीससौ छप्पनके मगसिरके शुभ महीनेमें पौर्णमासीके शुभ दिन प्रातःकालके समय आचार्य शांतिसागरने चार एल्लकोंको श्रीजैनेश्वरी दीक्षा दी। आगे उन दीक्षित हुए मुनियोंके यथा क्रमसे नाम कहते हैं।

चन्द्रसागरयोगीन्द्रः धर्ममूर्तिः प्रभाववान्।
विचक्षणो दयामूर्ति मुनिः श्रीपार्श्वसागरः॥५१॥
चतुर्विंशतिपूज्यानां स्तुतिकर्ता प्रसन्नधीः।
कर्ताहमस्य वृत्तस्य तृतीयः कुंथुसागरः॥५२॥
ध्यानोपवासदक्षश्च तपस्वी नमिसागरः।
चत्वारो मुनयश्चैते दीक्षिता तत्र सूरिणा॥५३॥

अर्थ— धर्ममूर्ति और प्रभावशाली योगिराज चंद्रसागर दीक्षित हुए, दयाकी मूर्ति और सबसे विचक्षण श्रीपार्श्वसागर मुनि दीक्षित हुए। चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुति की रचना करनेवाला प्रसन्न चित्तको धारण करनेवाला और इस चरित्रको बनानेवाला तीसरा मैं कुंथुसागर हूं। तथा ध्यान उपवासमें अत्यंत चतुर ऐसे नमिसागर चौथे मुनि दीक्षित हुए हैं। इस प्रकार उस सोनागिर पर्वतपर आचार्य महाराजने चार एल्लकोंको

जैनेश्वरी दीक्षा देकर मुनि बनाया था ।

क्षुल्लकोऽजितकीर्तिश्च विरक्तस्तत्र दीक्षितः ।
मुनयः क्षुल्लकाः सर्वे वीतरागः दयालवः ॥५४॥

अर्थ— विरक्त हुए, क्षुल्लक अजितकीर्ति भी वहींपर दीक्षित हुए थे । इसप्रकार दीक्षित हुए वे सब मुनि और क्षुल्लक वीतराग थे तथा दयालु थे ।

ततः सम्बोधयन् मार्गे विहरन् तत्र देशके ।
ग्वाल्हेरनगरं प्राप्तः दिनानि कतिचित्स्थितः ॥

अर्थ– फिर उसदेशमें विहार करते हुए और मार्गमें जीवों को उपदेश देते हुए ग्वालियर पहुंचे और वहांपर कुछ दिन रहे ।

प्रार्थनावशतो यातो मक्खनलाल शास्त्रिणः ।
मोरेनानगरं श्रीमानुपदेष्टुं सुश्रावकान् ॥५६॥

अर्थ— मक्खनलाल शास्त्रीकी प्रार्थनासे श्रीमान् वे आचार्य श्रावकोंको उपदेश देनेके लिये मोरेनानगरमें आये ।

स्थित्वा कतिदिनं तत्र राजाखेडापुरं गतः ।
सहतेस्माखिलैः सार्द्धमुपसर्गं द्विजादिजम् ॥५७॥

अर्थ— मोरेनामें कुछ दिन रहकर राजाखेडा गये और वहांपर उन्होने सब संघके साथ ब्राह्मण आदि मिथ्या दृष्टीयोंका किया हुआ घोर उपसर्ग सहन किया ।

ततो चलत्समित्या हि धर्ममुद्योतयन् पथि ।
ग्रामं पुरं समुल्लंघ्य मथुरायां समागतः ॥५८॥
श्रीजम्बुस्वामिनं नत्वा सिद्धभूमिं सुसिद्धिदाम् ।
तत्क्षेत्रं परमं रम्यं ध्यानयोग्यं निरीक्ष्य च ॥५९॥
वर्षायोगो धृतस्तत्र जगत्पूज्येन योगिना ।
कदाचोपवने ध्यानं कदाचिज्जिनमन्दिरे ॥६०॥
प्रभुपार्श्वे श्मशाने च कदाचिन्नगरे वरे ।
एवं ध्यानं सदा कुर्वन् वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥६१

अर्थ— वे आचार्य समिति पूर्वक वहांसे भी चले और मार्गमें धर्मका उद्योत करते हुए, नगर तथा गांवोंको उल्लंघन कर मथुरानगरमें आये। वहांपर उन्होंने जम्बूस्वामीको नमस्कार किया और सब सिद्धियोंको देनेवाली सिद्धभूमिको नमस्कार किया। तदनंतर उस क्षेत्रको परम मनोहर और ध्यानके योग्य देखकर उन जगत्पूज्य योगिराजने वहींपर वर्षायोग धारण किया। वे आचार्य कभी बागमें ध्यान करते थे, कभी जिनमंदिरमें ध्यान करते थे, कभी भगवान्के समीपमें ध्यान करते थे, कभी श्मशानमें ध्यान करते थे और कभी श्रेष्ठ नगरमें ध्यान करते थे। इसप्रकार सदा ध्यान करते हुए उन्होंने वर्षा-योग पूर्ण किया।

उपवासाधिकास्तत्र कृताः संघेन सूरिणा।
रथोत्सवो जिनेशानां चिरकालेन नाभवत् ॥६२॥
महिम्ना शांतिसिंधोश्च सर्वत्र भ्रमितः पुरे।
एवं धर्ममहोद्योतं कृत्वाचलत्ततः पुरः ॥६३॥

अर्थ— वहांपर आचार्यमहाराजने संघके साथ बहुतसे उपवास किये। मथुरानगरमें भगवान् जिनेन्द्रदेवका रथोत्सव बहुतदिनसे नहीं निकला था वह भी आचार्य शांतिसागरकी महिमासे समस्त नगरमें घूमा। इसप्रकार धर्मका महाउद्योत करते हुए वे आचार्य आगे चले।

ईर्यासमिति भावेन शुद्धं मार्गं विलोकयन्।
अनेकग्रामनगरे बोधयन् मुनिश्रावकान् ॥६४॥
उपसर्गं सहन् धीरः स्वात्मानं चिंतयन् तदा।
चचाल स्थापयन् भव्यान् जिनधर्मे सुखप्रदे ॥६५

अर्थ— वे धीरवीर आचार्य ईर्यासमितिके भावोसे शुद्ध मार्गको देखते जाते थे, अनेक गांवोमें तथा नगरोमें मुनि और श्रावकोंको उपदेश देते जाते थे, उपसर्गोंको सहते जाते थे, अपने आत्माका चिंतवन करते जाते थे और सुख देनेवाले जिनधर्ममें अनेक भव्योंको स्थापन करते जाते थे।

अलीगढ पुरे रम्ये नन्दनलाल शास्त्रिणे।
ज्ञानसागरमाख्याय वितीर्णं क्षुल्लकव्रतम् ॥६६॥

अर्थ— अलीगढ नामके मनोहर नगरमें नंदनलाल शास्त्रीको क्षुल्लकव्रत दिये और उनका नाम ज्ञानसागर रक्खा।

श्रीमहबूबसिंहस्य श्रीलालारामशास्त्रिणः।
प्रार्थनातः समायात इन्द्रप्रस्थं महापुरम् ॥६७॥

अर्थ— वे आचार्य श्रीमहबूबसिंह और लालाराम शास्त्रीकी प्रार्थनासे इन्द्रप्रस्थ (देहली) नामके महानगरमें पहुंचे।

गच्छतो यतमानस्य श्रीगुरोश्च शनैः शनैः।
इन्द्रप्रस्थं महादूरं जातं गव्यूतिमात्रकम् ॥६८॥

अर्थ— वे गुरु धीरे धीरे यत्नाचारपूर्वक चलते थे और देहली वहुत दूर थी तथापि उनके लिये दो कोसके समान होगई थी।

जिनराजसुभक्तानां शान्तिसागरसेविनाम्।
श्रद्धानां स्वात्ममग्नानां मोक्षोपि निकटायते ॥६९

अर्थ— जो श्रावक जिनराजके श्रेष्ठ भक्त हैं तथा शांतिसागर महाराजकी सेवा करते हैं और अपने आत्मामें सदा लीन रहते हैं उनकेलिये मोक्ष भी निकट हो जाती है।

बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं राजलोकैर्वरैर्नरैः।
जयशब्दं प्रकुर्वद्भिर्वाद्यैश्च विविधैर्ध्वनिम् ॥७०॥
अभवाम वयं धन्याः अद्यैवमिति धार्मिकैः।
वदद्भिः प्रमुखैर्भव्यैः प्राविशद्दिल्लिपत्तनम् ॥७१॥

अर्थ— अनेक श्रावकोंके साथ तथा उत्तम राजपुरुषोंके साथ और जय जय शब्द करते हुए अनेक प्रकारके बाजे बजाते हुए तथा आज हम लोग धन्य हुए हैं इसप्रकार कहते हुए अनेक मुख्य मुख्य धर्मात्मा भव्यजीवोंके साथ उन आचार्यने देहलीनगरमें प्रवेश किया।

सर्वेषां भावनां ज्ञात्वा धार्मिकाणां शुभात्मनाम्।
वर्षायोगः कृतस्तत्र संघेन गुरुणा सह ॥७२॥

अर्थ— शुभ आत्माको धारण करनेवाले समस्त धर्मात्मा पुरुषोंकी भावनाओंको जानकर आचार्यमहाराजने समस्त संघके साथ वहींपर चातुर्मास धारण किया।

जिनालयेषु सर्वेषु स्थित्वा संबोध्य धार्मिकान्।
ध्यानं जपं तपः कुर्वन् वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥७३

अर्थ— वहांपर सब जिनालयोंमें रहे और सब धार्मिक लोगोंको उपदेश दिया। इसप्रकार जपतप और ध्यान करते हुए वर्षायोग समाप्त किया।

ततोऽचलन्महावीर क्षेत्रं परमसुंदरम्।
तत्र प्राप्य नुतस्तेन वर्द्धमानो महाप्रभुः ॥७४॥

अर्थ— तदनंतर संघके साथ सबको परम सुंदर महावीरजी क्षेत्रको चले और वहांपर पहुंचकर भगवान् वर्धमान महाप्रभुको नमस्कार किया तथा उनकी स्तुति की।

नरेन्द्रा बहवो मार्गे वचनं शिवदं प्रियम्।
आकर्ण्य शान्तिसिंधोश्च नेमुस्तच्चरणद्वयम्॥७५॥

अर्थ— मार्गमें बहुतसे राजालोक उनके दर्शनको आये और आचार्य शांतिसागरके मोक्ष देनेवाले प्रिय वचनोंको सुनकर उन्होंने आचार्य महाराजके दोनों चरणोंको नमस्कार किया।

त्यक्त्वा तदुपदेशेन मद्यं मांसमभक्ष्यकम् ।
बभूवुर्धार्मिका लोकाः दर्शनेन तपस्विनः ॥७६॥

अर्थ— आचार्य महाराजके उपदेशसे और उन महा तपस्वीके दर्शनसे बहुतसे लोग मद्य, मांस आदि अभक्ष्योंका त्यागकर धार्मिक बनगये ।

गोपीलालफतेलालजमुनालालधर्मिणः ।
प्रार्थनावशतः श्रीमानिन्द्रलालस्य शास्त्रिणः ॥७७
कोटतुल्यैर्महापूतैः सुन्दरैः कतिचित्शतैः ।
जिनालयैर्महारम्यं हट्टैर्हर्म्यैर्मनोहरम् ॥७८॥
चचाल जैपुरं सूरिर्यज्जैनानां महापुरम् ।
सद्ध्वजैस्तोरणै रम्यैः शालाभिश्च विराजितम् ।

अर्थ—तदनंतर सेठ गोपीलाल, फतेहलाल, जमुनालाल और इन्द्रलाल शास्त्रीकी प्रार्थनासे वे श्रीमान् आचार्य जयपुरके लिये चले। वह जयपुरनगर किलेके समान, महापवित्र सैकडों सुंदर चैत्यालयोंसे अत्यंत मनोहर है, बाजार और मकानोंसे मनोहर है, श्रेष्ठ ध्वजाओंसे, मनोहर तोरणोंसे और अनेक शालाओंसे शोभायमान है तथा जैनियोंका सबसे बडा नगर है।

बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं नरै राज्याधिकारिभिः ।
जैपुरं प्राविशत्सूरिः संघेन सह योगिराट् ॥८०॥

अर्थ— अनेक श्रावकोंके साथ, अनेक राज्यके अधिकारी लोगोंके साथ उन मुनिराज आचार्यने अपने समस्त संघ सहित जैपुरनगरमें प्रवेश किया ।

त्यक्त्वा तदुपदेशेन शूद्रहस्तजलं नराः ।
बभूवुर्बहवो धन्या गुणज्ञा व्रतधारिणः ॥८१॥
धर्मसंवर्द्धकं क्षेत्रं जनान् ज्ञात्वा सुधार्मिकान् ।
वर्षायोगो धृतस्तत्र संघेन गुरुणा सह ॥८२॥

अर्थ— उनके उपदेशसे शूद्रके हाथसे पानी पीनेका त्यागकर बहुतसे लोग धन्य होगये, गुणज्ञ बनगये और बहुतसे व्रती बनगये । आचार्य महाराजने उस क्षेत्रको, धर्मको बढानेवाला समझकर और लोगोंको धार्मिक समझकर वहींपर संघके साथ वर्षायोग धारण किया ।

मोक्षदं शान्तिदं कुर्वन् क्षमापूर्णं महातपः ।
चातुर्मासं समाप्यैवं ततोपि पुरतोऽचलत् ॥८३॥

अर्थ— वहांपर मोक्ष और शान्तिको देनेवाले और क्षमासे परिपूर्ण तपश्चरण करते हुए उन आचार्यने चातुर्मास पूर्ण किया और फिर आगे चले ।

विहरन् तत्र सर्वत्र धर्ममुद्योतयन् सदा ।
उपसर्गं सहन् धीरः भव्यान् संतोषयन् मुदा ॥८४

विरोधं विघ्नसंघातं भेदयन् बोधयन् जनान् ।
सर्वत्र मंगलं कुर्वन् सुखशान्तिं प्रसारयन् ॥८५॥
संप्राप्तः सर्वसंघेन नवीननगरं वरम् ।
बहुभिः श्रावकैः सार्द्धं प्राविशन्नगरं मुदा ॥८६॥

अर्थ— तदनंतर उस देशमें सब जगह विहार करते हुए, सदा धर्मका उद्योत करते हुए, उपसर्गोंको सहन करते हुए, भव्यजीवोंको आनंदके साथ संतुष्ट करते हुए, विरोध और विघ्नोंके समूहको नाश करते हुए, लोगोंको धर्मोपदेश देते हुए, सब जगह आनंदमंगल करते हुए, सुखशांति फैलाते हुए वे धीर-वीर आचार्य अपने समस्त संघके साथ धर्मकी वृद्धि करनेवाले नयानगर–व्यावर नगरमें पहुंचे तथा अनेक श्रावकोंके साथ आनन्दके साथ नगरमें प्रवेश किया ।

धर्मवीरस्य विदुषः चंपालालस्य श्रेष्ठिनः ।
मोतीलालादि सर्वेषां पुत्राणां तत्र श्रेष्ठिनः ॥८७॥
प्रार्थनावशतस्तत्र ज्ञात्वा क्षेत्रं शुभं मुदा ।
वर्षायोगः समारब्धः ससंघेन च सूरिणा ॥८८॥
छाणीस्थेन ससंघेन शांतिसागरसूरिणा ।
गुरुवर्यस्य निकटे वर्षायोगो धृतस्तदा ॥८९॥

अर्थ— अत्यंत विद्वान् और धर्मवीर सेठ चंपालाल की प्रार्थनासे तथा उन्हीं सेठके मोतीलाल आदि समस्त

पुत्रोंकी प्रार्थनासे उस क्षेत्रको शुभ समझकर आचार्य शांतिसागरने अपने समस्त संघके साथ आनंदसे वर्षायोग धारण किया। तथा उन्हीं गुरुवर आचार्य शांतिसागरके समीप ही छाणी निवासी, आचार्य शांतिसागरने अपने संघके साथ उसी समय वर्षायोग धारण किया।

स्वाध्यायं कुर्वता तत्र धर्मध्यानं सुदुर्लभम् ।
भव्याः संबोधितास्तेन वर्षायोगो व्यतीयत ॥९०॥

अर्थ— वहांपर स्वाध्याय करते अत्यंत दुर्लभ धर्मध्यान करते हुए और प्रतिदिन भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए उन्होंने वर्षायोग व्यतीत किया।

चतुर्विंशतिशतेब्दे षष्ठ्यधिके महाशुभे ।
मोक्षं गते जिने वीरे फाल्गुने शुक्लपक्षके ॥९१॥
प्रतिष्ठा जिनबिम्बानां घासीलालेन श्रेष्ठिना ।
कारिता शुभभावेन प्रतापगढपत्तने ॥९२॥

अर्थ—वीरनिर्वाण संवत् चौवीससौ साठके फाल्गुन शुक्ल पक्षमें सेठ घासीलालने अपने प्रतापगढ नगरमें बडे शुभ भावोंसे प्रतिष्ठा कराई थी।

विहरन् तत्र देशेषु सूरिः श्रीशान्तिसागरः ।
भव्यानुपदिशन् प्राप्तः प्रतापगढपत्तनम् ॥९३॥
प्रार्थनावशतस्तत्र संघभक्तस्य श्रेष्ठिनः ।
दृष्ट्वा महोत्सवं सूरिरहानि कतिचित्स्थितः ॥

अर्थ— ब्यावरसे चलकर उस देशमें विहार करते हुए और भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए, वे आचार्य शान्तिसागर संघभक्तशिरोमणि सेठ घासीलालकी प्रार्थनासे प्रतिष्ठा महोत्सवको देखते हुए कुछ दिन वहां ठहरे।

तदा द्वौ दीक्षितौ साधू गुरुवर्येण शान्तिदौ।
वर्णयामि तयोर्नाम पापहारि यथाक्रमम् ॥९५॥
प्रथमश्च दयामूर्तिरादिसागरनामकः।
मम विद्यागुरुर्धीरः सुधर्मसागरोऽपरः ॥९६॥
मनोहरः सुबुद्धिश्चाविद्याया ध्वंसकारकः।
तद्भ्रातरोपि विद्वांसः सरस्वत्याः सुतोपमाः ॥९७॥

अर्थ— प्रतापगढमें उससमय आचार्य शांतिसागरने दो क्षुल्लकोंको जैनेश्वरी दीक्षा दी। आगे मैं पापनाश करनेवाले उन दोनोंके नाम यथा क्रमसे कहता हूं। पहले मुनिका नाम दयामूर्ति आदिसागर है, और दूसरे धीरवीर मेरे विद्यागुरु सुधर्मसागर हैं। ये सुधर्मसागर बहुत मनोज्ञ हैं, अविद्याको नाश करनेवाले हैं तथा इनकी बुद्धि बहुत श्रेष्ठ है। इनके भाई भी सरस्वतीके पुत्रके समान विद्वान् हैं।

वर्णी सालिगरामश्च क्षुल्लकव्रतमाददे।
सुनाम्नाऽजितकीर्तिश्च प्रसिद्धो गुणवानभूत् ॥९८
एवं महोत्सवं दृष्ट्वा तत्रत्योपि प्रजापतिः।

नगरश्रेष्ठीतिपदं दत्तं तच्छ्रेष्ठिनस्तदा ॥९९॥
न हिंसां कारयिष्यामि कुत्रापि ममदेशके।
प्रतिज्ञां धृतवान् भूपः सूरिदर्शनतः सुधीः ॥१००

अर्थ— ब्रह्मचारी सालिगरामने क्षुल्लक व्रत धारण किया और अजितकीर्ति नाम रखकर गुणवान् प्रसिद्ध हुए। वहांके राजाने संघभक्त शिरोमणिके कराये हुए उस महा उत्सवको देखकर उन सेठको नगरसेठका पद दिया। तथा उन बुद्धिमान् महाराजने आचार्य शांतिसागरके दर्शन कर "मैं अपने देशमें हिंसा नहीं कराऊंगा" ऐसी प्रतिज्ञा धारण की।

आगतान् सकलान् भव्यान् प्रतिष्ठामंगलोत्सवे।
संबोध्य करुणासिंधुराचार्यश्च ततोऽचलत् ॥१॥

अर्थ— उस प्रतिष्ठामंगलोत्सवमें जो भव्यजीव आये थे, उन सबको उपदेश देकर वे दयालु आचार्य आगे चले।

मार्गे प्रबोधयन् भव्यान् मिथ्याभ्रान्तिं विनाशयन्।
सर्वत्र संचरन् देशे कुर्वन् स विविधं तपः ॥२॥
तथोदयपुरं प्राप्तः पालयंश्च महाव्रतम्।
तत्र लखमीचन्द्रश्च छोगालालस्य धर्मिणः ॥३॥
मोतीलालस्य भव्यस्य चांदमलगुलाबयोः।
प्रार्थनावशतो धीमान् पुरं दृष्ट्वा सुधार्मिकम् ॥४

सरोभिः पर्वतैरम्यं ध्यानयोग्यं तपस्विनाम् ।
करोतिस्म ससंघोऽसौ वर्षायोगं महामुनिः ॥५॥

अर्थ— मार्गमें भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए, उनकी मिथ्याभ्रांतियोंको दूर करते हुए, सब देशमें विहार करते हुए, अनेक प्रकारका तपश्चरण करते हुए और महाव्रतोंको पालन करते हुए, वे आचार्य अनुक्रमसे उदयपुर पहुंचे। उदयपुरके सेठ लखमीचन्द्र, छोगालाल, मोतीलाल, चांदमल, गुलाबचन्द आदिकी प्रार्थनासे उन बुद्धिमान् महामुनि आचार्यने उस नगरमें धर्मात्मा लोगोंको देखकर और उस नगरको सरोवर और पर्वतोंसे मनोहर तथा तपस्वियोंको ध्यानके योग्य देखकर संघके साथ वर्षायोग धारण किया।

राजवर्गैः सदा पूज्यः कुर्वन् धर्मोपदेशनाम् ।
स संघेन तदा सूरिर्वर्षायोगं व्यतीतवान् ॥६॥

अर्थ— राजवर्गके द्वारा सदा पूज्य ऐसे उन आचार्यने धर्मोपदेश देते हुए, अपने समस्त संघके साथ वर्षायोग व्यतीत किया।

ततोऽचलत्स संघेन धुलेवनगरं प्रति ।
तत्र गत्वा च वृषभं नत्वा स्तुत्वा पुनःपुनः ॥७॥
दिनानि कतिचित्स्थित्वा सूरिर्निरगमत्ततः ॥

अर्थ— वहांसे भी सब संघके साथ धुलेवनगरके लिये चले तथा वहां पहुंचकर भगवान् वृषभदेवको वार वार नमस्कार

किया और वार वार उनकी स्तुति की। वे महामुनि थोडे दिन वहां रहकर फिर वहांसे भी आगे चले ।

इत्युत्तरदिक्सन्धिः ।

कालीदासवकीलस्य केवलल्लुधर्मिणः ॥८॥
मगनलालनाथस्य प्रार्थनावशतस्तदा ।
दयासिंधुर्जगद्वंद्य ईडरं प्रति सोऽगमत् ॥९॥

अर्थ— कालिदास वकील, केवलभाई, लल्लूभाई, मगनलाल, नाथा आदि धर्मात्मा भाइयों की प्रार्थनासे वे जगत्वंद्य दयासागर आचार्य ईडरके लिये चले ।

भव्यान् प्रमुदितान् कुर्वञ्जिनधर्मं प्रभावयन् ।
नामयन् राजलोकांश्च तन्वन् धर्मोपदेशनाम् ॥१०
स्वात्मानं चिंतयन् सूरिः दयाधर्मं प्रपालयन् ।
गोरलं नगरं प्राप्तः स संघेन क्रमात् मुदा ॥११॥

अर्थ— भव्यजीवोंको प्रसन्न करते हुए, जिनधर्मकी प्रभावना करते हुए, राजलोगोसे नमस्कार कराते हुए, धर्मोपदेश देते हुए, अपने आत्माका चिंतवन करते हुए और दया धर्मको पालन करते हुए, वे आचार्य अनुक्रमसे चलकर आनन्दके साथ गोरलनगरमें पहुंचे ।

दृष्ट्वा रम्यतरं क्षेत्रं चैकान्तं निरुपद्रवम् ।
सूरिणा गुरुवर्येण वर्षायोगो धृतस्तदा ॥१२॥

यशोधरेण भव्येन नेमिसागरयोगिना ।
द्वाभ्यां हि ब्रह्मचारिभ्यां क्षुल्लकेन समं तदा ॥१३॥

अर्थ— उस गोरल क्षेत्रको अत्यंत मनोहर, एकान्त और उपद्रवरहित देखकर गुरुवर्य आचार्यने मुनिनेमिसागरके साथ क्षुल्लक भव्य यशोधरके साथ और दो ब्रह्मचारियोंके साथ वहींपर वर्षायोग धारण किया ।

शान्तिदं विविधं ध्यानं प्रकुर्वन् मोक्षदं तपः ।
गोरले पत्तने धीरः स्थितवान् बोधयन् जनान्॥१४

अर्थ— वे आचार्य शांतिको देनेवाले अनेक प्रकारके ध्यानको तथा मोक्ष देनेवाले तपश्चरणको करते हुए और जीवोंको उपदेश देते हुए गोरलनगरमें ठहरे ।

गोरलात्पंचक्रोशं हि दूरमीडरपत्तनम् ।
ध्यानयोग्यं शुभं क्षेत्रं पर्वतैरपि वेष्टितम् ॥१५॥
तत्र गत्वा ससंघेन वर्षायोगं सुपुण्यदम् ।
कुर्विति स्वामिवर्येणाज्ञापितो धर्मसागरः ॥१६॥

अर्थ— आचार्यवर्य श्रीशान्तिसागरने मुनिराज सुधर्मसागरको आज्ञा दी कि गोरलसे पांच कोस दूर ईडर नगर है। वह क्षेत्र शुभ है, ध्यानके योग्य है और पर्वतोंसे वेष्टित है। तुम संघके साथ वहीं जाकर पुण्य बढानेवाला वर्षायोग धारण करो ।

तदाज्ञां शिरसा धृत्वा सुधर्मोऽपि दयानिधिः।
शेषसंघं समादाय प्राप्त ईडरपत्तनम् ॥१७॥

अर्थ— दयानिधि सुधर्मसागर भी आचार्य महाराजकी आज्ञाको मस्तकसे स्वीकारकर शेष संघको लेकर ईडरनगरमें पहुंचे।

सुधर्मसागरस्यान्ते क्षुल्लकाः पंचवर्णिताः।
एल्लकोऽपि च धर्मज्ञो मुनयोऽपि त्रयो मताः ॥१८॥
वीरसागरनामान्यः आदिसागर नामभाक्।
कुंथुसागरनामाहं एते च मुनयो मताः ॥१९॥
सुमतिसागरो भव्य य आर्यव्रतभूषणः।
पार्श्वकीर्तिश्चन्द्रकीर्तिर्गुणज्ञोऽजितकीर्तिकः ॥२०
शुभचन्द्रो नेमिसिंधुः क्षुल्लकाः पंचकीर्तिताः।
सुधर्मसागरः सर्वैर्वर्षायोगं गृहीतवान् ॥२१॥

अर्थ— सुधर्मसागरके समीप पांच क्षुल्लक थे, एक एल्लक थे और तीन मुनि थे। वीरसागर, मैं कुंथुसागर और आदिसागर ये तीन मुनि थे, सुमतिसागर एल्लकके व्रतोंसे विभूषित थे तथा पार्श्वकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, अजितकीर्ति, शुभचन्द्र, नेमिसागर ये पांच क्षुल्लक थे। इन सबके साथ सुधर्मसागरने वर्षायोग धारण किया।

इतश्चाचार्यवर्येण क्षुल्लकश्चार्हदासकः।
दीक्षितश्च जिनमति सुमतिमति क्षुल्लिके ॥२२॥

अर्थ— इधर आचार्यने दीक्षा देकर अर्हद्दासे क्षुल्लक बनाया और जिनमति सुमतिमति दो क्षुल्लिकाएं बनाई।

इत्येवं बोधयन् भव्यान् चातुर्मासं व्यतीतवान्।
स्वर्मोक्षदो हि मे पूज्यो गुरुवर्यः क्षमानिधिः॥२३

अर्थ— इसप्रकार भव्यजीवोंको उपदेश देते हुए, स्वर्ग मोक्षके देनेवाले, मेरे पूज्य क्षमानिधि गुरुवर्यने चातुर्मास व्यतीत किया।

सर्वसंघं समादाय आचार्यः शान्तिसागरः।
तारंगासिद्धिभूमिं च वंदनार्थं ततोऽचलत्॥२४॥

अर्थ— तदनंतर आचार्य शांतिसागर स्वामी सब संघ-को लेकर तारंगा सिद्धिभूमिकी वदना करनेके लिये चले।

षड्भिस्तपस्विभिःसार्द्धं तावद्भिः क्षुल्लकैः समम्।
सार्द्धं च क्षुल्लिकाभ्यां हि बहुभिर्ब्रह्मचारिभिः॥२५
श्रावकैर्द्विसहस्रैश्च कुर्वद्भिश्च जयध्वनिम्।
भूधरं कंपयन् प्राप्तः सिद्धक्षेत्रं महामुनिः॥२६॥

अर्थ— वे महामुनि आचार्य छह तपस्वियोंके साथ, छह क्षुल्लकोंके साथ, दो क्षुल्लिकाओंके साथ, बहुतसे ब्रह्मचारियोंके साथ और जयजय शब्द करते हुए दो हजार श्रावकोंके साथ पर्वतको कंपायमान करते हुए सिद्धक्षेत्रपर पहुंचे।

वंदित्वा वरदत्तं च तथा सागरदत्तकम्।
तारंगं सिद्धक्षेत्रं च कृतकृत्योऽभवत्तदा॥२७॥

अर्थ— वहांपर सबने वरदत्त, सागरदत्त और वरां[illegible] नामके महामुनियोंकी वंदना की तथा सिद्धक्षेत्रकी वंदना की। इसप्रकार वदना कर वे आचार्य कृतकृत्य हुए ।

ध्यानं तपो जपं कुर्वन् स्वात्मानं चिंतयन् गिरौ ।
संघेनसह संघश्रीः दिनानि कतिचित्स्थितः ॥२८॥

अर्थ— उस पर्वतपर ध्यान, तप, जप करते हुए और अपने आत्माका चिंतवन करते हुए, वे संघाधिपति अपने संघके साथ कुछ दिनतक वहां ठहरे ।

शान्तिसागरसूरेश्च बांधवा अपि धार्मिकाः ।
तेषां व्रतानि वक्ष्येऽहं गृहीतानि मुदा च यैः ॥२९

अर्थ— आचार्य शांतिसागरके भाई भी बडे धार्मिक हैं, अब उनके व्रतोको कहता हूं जो कि उन्होंने हर्षपूर्वक लिये हैं ।

ज्यायांश्च देवगौडाख्यो बंधुर्धर्मपरायणः ।
त्यक्त्वा मोहं कुटुंबं चागृहीच्च क्षुल्लकव्रतम् ॥३०॥

अर्थ— इनका सबसे बडा भाई देवगौडा है, वह बहुत ही धर्मात्मा है। उसने भी मोह और कुटंबको छोडकर क्षुल्लक व्रत धारण कर लिये हैं ।

शुद्धव्रतस्य तस्यास्ति नाम सन्मतिसागरः ।
द्वितीयः आदिगौडाख्यः सच्छ्रावकाशिरोमणिः ॥३१

अर्थ— शुद्धव्रतको धारण करनेवाले उन क्षुल्लकका नाम सन्मतिसागर रक्खा गया है । दूसरे बडे भाईका नाम आदिगौडा

है, उसने श्रावकके व्रत धारण किये हैं और श्रावकोंका शिरोमणि कहलाता है।

चतुर्थः कुम्भगौडाख्यो विरक्तो भवभोगतः।
मोहं विहाय मोक्षार्थी ब्रह्मचारी वरोऽभवत्॥३२

अर्थ— चौथा छोटाभाई कुंभगौडा है, वह संसार और भोगोंसे विरक्त है और मोक्षकी इच्छा करनेवाला है, वह भी मोहका त्यागकर श्रेष्ठ ब्रह्मचारी होगया है।

तृतीयः सातगौडाख्यो जगच्चूडामणिर्जिनः।
ममात्मसुखदाता च सूरिः श्रीशान्तिसागरः॥३३

अर्थ— तीसरे भाईका नाम सातगौडा था, जो अब जगतके चूडामणि मोहरूपी शत्रुको जीतनेवाले और मेरे आत्माको सुख देनेवाले आचार्य शांतिसागरके नामसे प्रसिद्ध हैं।

चन्द्रमत्यर्यिका जाता गुरुवर्येण दीक्षिता।
अन्येषां दीक्षितानां च गणना कथ्यतेऽधुना॥३४

अर्थ— आचार्य शांतिसागर महाराजने चन्द्रमती को दीक्षा देकर अर्जिका बनाया था। और भी जिन जिनको आचार्यने दीक्षा दी है, उनकी केवल संख्या दिखलाते हैं।

वंद्येनाचार्यवर्येण शान्तिसागरयोगिना।
दशैव मुनयः पूताः पूज्यपादेन दीक्षिताः॥३५॥

अर्थ— जिनके चरणकमल पूज्य हैं और जो सबकेद्वारा वंद्य हैं, ऐसे आचार्य शांतिसागर मुनिने दीक्षा देकर दश

पवित्र मुनि बनाये हैं ।

क्षुल्लका गुरुवर्येण पंचदशैव दीक्षिताः ।
क्षुल्लिका दीक्षिताः सप्त त्रिंशद्धि ब्रह्मचारिणः ॥३६

अर्थ— आचार्य महाराजाने पंद्रह क्षुल्लकोंको दीक्षा दी है, सात क्षुल्लिकाओंको दीक्षा दी है और दीक्षा देकर तीस ब्रह्मचारी बनाये हैं ।

व्रतिनः पुरुषाः षष्टि त्रिनवति व्रतीः स्त्रियः ।
दीक्षिता ब्रह्मचारिण्यः पंचविंशति धीमता ॥३७

अर्थ— उन बुद्धिमान् आचार्यने साठ पुरुषोंको अणुव्रत दिये, तिरानवे स्त्रियोंको अणुव्रत दिये और पच्चीस श्राविकाओंको ब्रह्मचारिणी बनाया ।

पंचमप्रतिमा युक्ता जाताः पंच स्त्रियो वराः ।
प्रथम प्रतिमा युक्ताः संजाता बहवो नराः ॥३८॥

अर्थ— आचार्यने पांच स्त्रियोंको पांचवी प्रतिमाएं दीं । तथा पहली प्रथमा बहुतसे स्त्री पुरुषोंको दी ।

श्राद्धेभ्यः पंचलक्षेभ्यः ददौ यज्ञोपवीतकम् ।
विशेष व्रतव्रातेन सार्द्धं मूलगुणेन हि ॥३९॥

अर्थ— आचार्य महाराजने लगभग पांच लाख श्रावकोंको विशेष व्रतोंके समूहके साथ तथा मूलगुणोंके साथ यज्ञोपवीत दिया ।

यस्मिन्कुले समुत्पन्नास्तीर्थेशा धर्मनायकाः।
तस्मिन्नेव कुले पूते तव जन्म महात्मनः ॥४१

अर्थ— जिस कुलमें धर्मके स्वामी तीर्थंकर उत्पन्न हैं, उसी पवित्र कुलमें महात्मा शांतिसागर उत्पन्न हुए हैं।

हे क्षमावीर! हे धीर! कृपाब्धे करुणानिधे।
शक्तः शक्रोप्यशक्तोस्ति कथितुं ते चरित्रकम्।
मम विद्याविहीनस्य मन्दबुद्धेः कथैव का।
तथापि तवभक्त्यैव रचितं केवलं मया ॥४२॥
श्रीमन् तवैव शिष्येण कुंथुसागरयोगिना।
शान्तिदं त्वच्चरित्रं च संभूयात्स्वर्गमोक्षदम् ॥४३॥

अर्थ— हे क्षमाधारण करनेवालोंमें वीर, हे धीर, हे कृपाके सागर, हे करुणानिधि, शक्र वा इन्द्र यद्यपि समर्थ है तथापि आपका चरित्र कहनेके लिये असमर्थ है, फिर भला विद्यारहित और मंद बुद्धिको धारण करनेवाले मेरी तो बात ही क्या है। तथापि हे श्रीमन्! आपके ही शिष्य मुझ कुंथुसागर मुनिने केवल आपकी भक्तिके वश होकर ही इस चरित्रको बनाया है। ऐसा यह शांति देनेवाला आपका जीवन-चरित्र स्वर्ग मोक्षका देनेवाला हो।

जयतु जयतु देवः शान्तिसिंधुर्महात्मा।
सुरनरमुनिपूज्यः राजलोकैः सुसेव्यः ॥४४॥

मम दुरितनिहंता कुंथुसिंधोर्गुरुर्यः ।
भवतु शिवनिमग्नो भव्यकल्याणदाता ॥४५॥

अर्थ— जो शांतिसागर देव, देव मनुष्य और मुनियोंके द्वारा पूज्य हैं, राजलोक जिनकी सेवा करते हैं, जो मुझ कुंथुसागरके पापोंको नाश करनेवाले हैं तथा मुझ कुंथुसागरके ही गुरु हैं और जो भव्यजीवोंको सदा कल्याण देनेवाले हैं ऐसे महात्मा शांतिसागर आचार्य सदा जयशील हो, जयशील हो तथा मोक्षसुखमें निमग्न हो।

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।